शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 7 अंक : 4 1 नवम्बर 2014

(कार्तिक-मार्गशीर्ष, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

नौरंग सहाय भारतीय 9460142051

प्रकाशकीय कार्यालयः

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,

जयपुर (राज.) 302001

दूरभाषः 9414040403,9782873467

दिल्ली ब्यूरो

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,

कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाषः 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at :

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 15/-

वार्षिक शुल्क 150/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक

में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल

का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

बच्चों की शिक्षा और परिवार - मा. गो. वैद्य

7

बच्चा पाठशाला में जाने लगने के पश्चात भी अपने घर का वातावरण संस्कारों के अनुकूल रखने का दायित्व माता-पिता का है। ऐसे संस्कार प्राप्त बच्चों को आयु के अठारह वर्ष पूर्ण होने के बाद उन्हें स्वतंत्रता रहे। मुझे विश्वास है कि संस्कारक्षम आयु में प्राप्त संस्कारों के कारण वह सभ्य, सच्चरित्र, स्वाभिमानी, राष्ट्राभिमानी नागरिक के नाते अपने को प्रस्तुत करेगा।

अनुक्रम

4.	बाल अधिकार और भारतीय परम्परा	- सन्तोष पाण्डेय
9.	बाल अधिकार का सही परिप्रेक्ष्य	- बजरंगी सिंह
11.	क्या कानूनों से बनते हैं रिश्ते ?	- विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
16.	Bharatiya Parampara and upbringing...	- Dr. TS Girishkumar
19.	Rights & Traditions for Children	- Dr. A. K. Gupta
22.	बाल अपराधों के कारण और निवारण	- मुरलीधर वैष्णव
24.	शिक्षकों की कमी व शिक्षक प्रशिक्षण: शिक्षा के..	- वीना सुखीजा
26.	ASAR Report	-
30.	स्वच्छता की नींव पर राष्ट्र निर्माण	- गुरचरन दास
32.	दरिंदगी का शिकार होते मासूम	- सुषमा वर्मा
34.	लैंगिक असमानता शिक्षा की राह का रोड़ा	- ओ पी सोनिक
36.	उच्च शिक्षा परिदृश्य और भारत सरकार	- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
39.	गतिविधि	

भारत में बाल न्यायिक कानून - 2014 अवांछनीय एवं अप्रासांगिक

❑ डॉ. रेखा भट्ट

अमेरिका एवं यूरोपीय देशों की लम्बे समय से बिखरती एवं अव्यवस्थित सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था के कारण ही बच्चों के अधिकार 'मानवाधिकार' में सम्मिलित किये गये हैं। इसके लिए वहाँ की सरकारों ने कई प्रकार के बाल अधिकार कानून बनाये और बालकों की सुरक्षा को कई प्रावधानों के माध्यम से संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत समाज में बच्चों को अठारह वर्ष से कम आयु के महत्वपूर्ण प्रतिभागी के रूप में पहचान मिलनी चाहिए। माता-पिता बच्चे की मूलभूत आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं करें, बल्कि उनका बच्चे के साथ अच्छा सामंजस्य हो। यह कानून भारत में बच्चों के लालन-पालन की आदर्श परम्परा, माता-पिता के अधिकारों एवं हमारी चिर-प्राचीन परिवार संस्था पर किया गया षड़यंत्र है, जिसे भारतीय परिपेक्ष्य में कभी सराहा नहीं जा सकता है।

14

संपादकीय

बाल अधिकार और भारतीय परम्परा

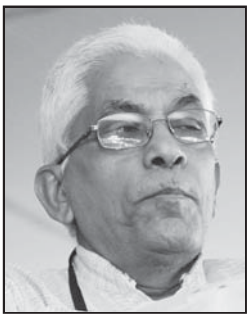

भारत के भौतिकतावादी समाज के कारण शिक्षकों ने गुरु का सम्मान खो दिया है। स्कूलों से बच्चों के विमुख होने का प्रमुख कारण शिक्षा का अरुचिकर होना, अंग्रेजी के कारण हीन भाव, शारीरिक दण्ड, मानसिक उत्पीड़न, स्वच्छता का अभाव, कन्याओं के लिये शौचालयों की पृथक व्यवस्था आदि अनेक कारण हैं, जो शैक्षिक परिवर्तनों में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। आठवीं तक परीक्षा व मूल्यांकन की पूर्ण तिलांजलि आदि ऐसे कारण हैं, जो सर्वव्यापी शैक्षिक प्रसार में बड़ी बाधा है। सम्पन्न वर्ग की शिक्षा व्यवस्था भी दोषमुक्त नहीं है। शिक्षा ज्ञापन केन्द्रित न होकर सूचना प्रधान, परीक्षा केन्द्रित हो गयी है। परीक्षा केन्द्रित व तीव्र मानसिक प्रतियोगिता केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था शिक्षा को तनावपूर्ण बना रही है। शिक्षा व्यवस्था में सह शैक्षणिक गतिविधियाँ, न्यूनता की ओर अग्रसर है। इनके निराकरण हेतु नित नये उपाय किये जा रहे हैं। परन्तु परिणाम तमाम वैधानिक उपायों व प्रयोगों के बावजूद पृथक मार्ग पर ही जा रहे हैं।

❑ सन्तोष पाण्डेय

भारतीय समाज वर्तमान में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संक्रमण से गुजर रहा है। अनेक शताब्दियों से भारत ने कई सांस्कृतिक परिवर्तनों का सामना किया है और सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्य बनाये रखने में सफल रहा है। अंग्रेजी शासन की स्थापना से भारतीय संस्कृति व परम्पराओं को गंभीर चुनौती मिली, जिसमें पश्चिमी जीवनदर्शन, जीवनशैली को अपनाने वाला नया सांस्कृतिक वर्ग उभर कर आया। इसे भारतीय समाज ने सहजता से आत्मसात कर लिया। परन्तु अब वैश्विक एकीकरण व चमत्कृत कर देने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों, वैश्विक आर्थिक सहयोग के कारण एक नये प्रकार का समाज विकसित हो रहा है। इस समाज का मूल प्रेरक पश्चिमी जीवनदर्शन व जीवनशैली है, जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सर्वाधिक महत्व है। आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था वैयक्तिक स्वतंत्रता को मूलाधार मानती है। पारिवारिक गठन व संबंध, सामाजिक संबंध, अन्य संबंधित संस्थाओं जिनमें शिक्षा सम्मिलित है, के निर्धारण के मूल में यही वैयक्तिक स्वतंत्रता निहित है। विवाह, विवाह-विच्छेद, बच्चे व बच्चों के लालन पालन व संरक्षण के दायित्व का निर्वाह किस प्रकार किया जाये, इनमें व्यक्ति, परिवार, समाज व राज्य का दायित्व कितना व किस प्रकार का हो, चिन्तन का विषय रहा है। वैयक्तिक स्वतंत्रता के कारण एकल परिवार व्यवस्था (न्यूक्लियर फैमिली) वाली संस्था उभरी। विवाह विच्छेद के अवसर व अधिकार से भिन्न-भिन्न पति-पत्नियों से उत्पन्न संतानों का दायित्व कौन निभाये का हल निकालना पड़ा। फलत: ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न पति-पत्नियों से उत्पन्न सन्तान समुच्चय के लालन-पालन व शिक्षा का भार एकल परिवार पर आया। परन्तु विवाह भी कितने समय तक निभेगा, की अनिश्चितता से संतानों का दायित्व भार संकट में पड़ गया। समाज व सरकार को आगे बढ़ कर दायित्व में हिस्सा बँटाना पड़ा। इसी से बाल अधिकार व बाल संरक्षण का विचार आगे आया। बच्चे देश व समाज का भविष्य होते हैं। उन्हें उत्तरदायी सामाजिक व्यक्ति बनाने का कार्य शिक्षा द्वारा ही संभव है। बच्चे एक निश्चित वय तक संरक्षण में रहते हैं, निर्णय लेने में मार्गदर्शन आवश्यक होता है, हित संरक्षण हेतु व्यवस्था आवश्यक होती है, इन सभी का निर्वाह परिवार द्वारा प्राकृतिक रूप से होना चाहिये, परन्तु सामाजिक विघटन के कारण उत्तरोत्तर रूप से राज्य को यह भार उठाना पड़ रहा है। वैयक्तिक स्वतंत्रता के कारण व्यक्तियों के हितों में टकराव की संभावना ने ही मानवीय अधिकारों के विचार को अग्रेसित किया। यही मानव अधिकार पत्र (चार्टर ऑफ हयूमन राइट्स) में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनाया गया। बाल अधिकार व संरक्षण की अवधारणा इसी मानवीय अधिकार पत्र का अभिन्न अंग है। इससे समाज व राज्य बच्चों को शोषण से मुक्ति, सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त वातावरण, शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधा देना सुनिश्चित होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की विनियुक्त संस्थायें व योजनायें इन्हें प्रदान करना सुनिश्चित करती है। संयुक्त राष्ट्र संघे की सदस्यता ग्रहण करने वाले प्रत्येक देश को इन्हें अंगीकार करना होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मिलेनियम डेवलपमैंट प्रोग्राम इसी का संकेतक है। भारत को भी इस संपूर्ण व्यवस्था को अपनाना व लागू करना आवश्यक है। परन्तु भारत के संदर्भ में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जिस संस्कृति, सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था में बाल अधिकार व संरक्षण की व्यवस्था समाहित हो, क्या वहाँ पर भी इनके लिये कानूनी व्यवस्था करना आवश्यक है? इस पर गंभीर मनन आवश्यक है।

भारतीय जीवनदर्शन व जीवन पद्धति वैयक्तिक स्वतंत्रता के स्थान पर सामूहिकता पर आधारित है। यह व्यक्तियों के स्थान पर सम्पूर्ण मानव जाति के उत्थान पर बल देती है, जिसमें समाज के सभी सदस्यों को अधिकारों के बजाय

कर्तव्य बोध अधिक कराया जाता है। सभी के सुखद वर्तमान व भविष्य की कामना की जाती है। वैयक्तिक उपलब्धियों के बजाय समाज की दृष्टि से उपयोगी संपूर्ण मानव के विकास की संकल्पना रहती है। संपूर्ण मानव के विकास के लिये संस्कारों से युक्त होना आवश्यक है। शाश्वत मूल्यों यथा अहिंसा, सत्य, अनुशासन, अपरिग्रह का पालन करना व गुरु, माता व पिता को सर्वोच्च सम्मान प्रदान करना, परस्पर सद्भाव, सम्मान, सहयोग, त्याग की भावना से समाज में कार्य करने का व्यक्तित्व में समावेश होना परम आवश्यक है। संस्कारयुक्त व शाश्वत मूल्यों से परिपूरित व्यक्ति व समाज कमजोर वर्ग के पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की कोमल स्थिति का ध्यान रखने का दायित्व अनादि काल से निभाते आये हैं। बाल अधिकार व संरक्षण का दायित्व संपूर्ण परिवार का होता है। भारतीय परंपराओं में बाल संरक्षण का कार्य तो माँ के गर्भधारण से ही प्रारम्भ हो जाता है। गर्भस्थ स्त्री का ध्यान संपूर्ण परिवार द्वारा उसके भोजन, विश्राम से लेकर संस्कार युक्त आचरण के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। देश के भिन्न-भिन्न भागों में इनकी विधि पृथक हो सकती है परन्तु परंपरा एक सी रहती है। बच्चे का परिवार में विशेष स्थान रहता है। संपूर्ण परिवार ही उसके हित चिंतन का भार वहन करता है। भारतीय समाज में विवाह एक अनिवार्य व स्थायी संबंध वाली संस्था है, जिससे बच्चों का हित चिन्तन व हित वर्द्धन स्वमेव हो जाता है। बालकों का सत्कर्मों से दीक्षित करने का कार्य जन्म पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाता है। माँ बच्चे की प्रथम शिक्षक ही नहीं होती वरन उसे संपूर्ण परिवार से परिचित कराने व उचित सम्मान दिलाने का दायित्व निभाती है। माता-पिता के अतिरिक्त दादा-दादी, नाना-नानी व अन्य सभी परिजन बच्चे के स्वस्थ्य विकास व उसमें अन्तर्निहित क्षमताओं को विकसित कराने में विभिन्न शैली के अनुरूप योग देते हैं। बच्चे के बड़े होने पर व शिक्षा ग्रहण करने लायक होने पर गुरु से संपर्क होता है। जहाँ गुरु सदैव शिष्य से हारने की परंपरा को ध्यान में रख बच्चों को शिक्षा देता है। अनादिकाल से गुरु को गोविन्द से बड़ा दर्जा देने की परंपरा रही है। यहाँ माँ-बाप की गुरु में अटूट आस्था होती है। सामान्यतया यही आस्था व विश्वास गुरु को अधिकार देता है कि बच्चे को शिक्षित व संस्कारयुक्त बनाने के लिये स्नेह व दण्ड की उचित व्यवस्था अपनायें। इसी परपंरा के अनुसार अशिक्षित व अनपढ़ अभिभावक भी गुरु से कामना करते हैं। बच्चे को शिक्षित-दीक्षित बनाने में 'हड्डी-हड्डी, माँ-बाप की' व शेष गुरुजनों का। यह भाव शिक्षा व्यवस्था में गुरु शिष्य संबंधों का आधार है, जो मनुष्य को संस्कार युक्त समाजोपयोगी सदस्य बनाती है। ऐसे वातावरण व परंपरावादी समाज में बाल संरक्षण बाल अधिकार को हक का दर्जा देना कुछ अटपटा सा लगता है।

आज का भारतीय समाज कोई स्थैतिक अवस्था वाला समाज नहीं है। भारतीय समाज के अन्य जीवनदर्शन वाले समाजों के सम्पर्क में आने से ये परंपरायें भी ढीली पड़ी है। अंग्रेजी शासन की स्थापना, मैकालयी शिक्षा पद्धति, पश्चिमी समाज

की वैयक्तिक व सामाजिक व्यवस्था से भारतीय समाज, परम्परा में, परिवार व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ है। वैश्वीकरण के उपरान्त यह प्रवृत्ति तीव्र हुई है। संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों, सामूहिक पारिवारिक हितचिन्तन के स्थान पर व्यक्तिवादी एकल परिवार हितचिन्तन, वैयक्तिक सफलता के शीर्ष की प्राप्ति आदि आज के समाज के उत्तरोत्तर बड़े होते वर्ग की प्रवृत्ति बन रही है। ऐसे में सुरक्षित एवं संरक्षित बाल्यकाल व्यवस्था कमजोर होती जा रही है। इन्हीं परिवर्तनों को दृष्टिगत कर सुरक्षित बाल्यकाल एवं बाल अधिकारों को संवैधानिक मान्यता मिली। भारतीय परंपराओं के विपरीत विकसित सामाजिक न्याय की धारणा को अपनाने से भी श्रमिकों, महिलाओं, कमजोर वर्ग के पुरुषों व बच्चों की दुर्बल स्थिति के कारण दुरुपयोग व शोषण न हो, आर्थिक बाध्यतावश आयु व कमजोर शारीरिक स्थिति के कारण उनका शोषण व दुरुपयोग न हो, इसके लिये पृथक वैधानिक व संरक्षण की आवश्यकता अनुभव की गई। मानवाधिकारों के अन्तर्गत भी वैधानिक सुरक्षा का प्रावधान आवश्यक हो गया।

विदेशी शासन काल में भारत का सर्वाधिक शोषण हुआ। आध्यात्मिक सांस्कृतिक एकतावश समाज तो सुरक्षित रहा परन्तु देश आर्थिक व राजनीतिक पराभव के कारण गरीब से गरीबतर होता गया। अंग्रेजों की सामन्तवादी शोषण व्यवस्था ने रही सही कसर पूरी कर दी। परिणाम आज का भारतीय समाज साधनविहीन, अशिक्षित, रूढिवादी, परंपरा की लीक पीटने वाले समाज में बदल गया। ऐसी दुरावस्था से उबारने के लिये भगीरथ प्रयास आवश्यक है। देश के गौरव की पुनर्स्थापना के लिये स्वस्थ्य, सुशिक्षित, विकासशील व साधन सम्पन्न समाज का निर्माण समय की आवश्यकता है। स्थिति में सुधार के लिये अनेक वैधानिक उपाय किये गये हैं व कार्यक्रम प्रारंभ किये गये हैं। बाल अधिकारों व बाल संरक्षण की व्यवस्था इन्हीं वैधानिक उपायों के अन्तर्गत की गई है। वैश्विक अर्थव्यवस्था व आधुनिक तकनीक आधारित अर्थव्यवस्था से भारतीय समाज में नया आर्थिक सम्पन्नता से युक्त वैयक्ति स्वतंत्रता व महत्वाकांक्षी वर्ग तेजी से बढ़ रहा है। इस वर्ग में संयुक्त परिवार का अर्थ बदल रहा है। पति-पत्नी दोनों के ही नौकरी पेशा होने के कारण बच्चों की देखभाल हेतु वृद्ध माँ-बाप को एकल परिवार में बुलाया जाता है, परन्तु बच्चे बड़े होने पर उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है। यह सामाजिक परिवर्तन में अर्द्ध- संयुक्त परिवारों का दौर है। इसमें मूल में व्यक्तिगत उत्थान की भावना ही प्रधानता पाती है। इस वर्ग के तेजी से बढ़ने के कारण ही बाल अधिकार व बाल संरक्षण की आवश्यकता तो अनुभव की जा रही है।

आज का भारत इण्डिया, भारत व हिन्दुस्तान में सामाजिक व आर्थिक स्थिति व दृष्टिकोण में विभाजित समाज है। यही संक्रमण काल है? आज के भारत की बहुसंख्यक आबादी घोर गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, अशिक्षा से अभिशिप्त है। परन्तु हाल ही वर्षों की आर्थिक प्रगति ने समाज के दृष्टिकोण को बदला है। समाज शनै-शनै परिवर्तनों को स्वीकारने वाला प्रगतिशील गतिविधियों के आशान्वादी व शिक्षा को मुक्ति का स्त्रोत मानने वाले समाज में बदल रहा है। इन सभी में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है। इन्हीं को दृष्टिगत कर अनेक वैधानिक उपाय किये गये हैं। इनमें 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों को अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार, मध्याह्न भोजन योजना, पोषाहार कार्यक्रम आदि प्रमुख हैं, जो बाल अधिकारों का संरक्षण करते हैं। परन्तु ये कार्यक्रम अभी भी शैशव अवस्था में हैं। इन्हें व्यापक बनाना व गहनता प्रदान करना आवश्यक है। भारत के भौतिकतावादी समाज के कारण शिक्षकों ने गुरु का सम्मान खो दिया है। स्कूलों से बच्चों के विमुख होने का प्रमुख कारण शिक्षा का अरुचिकर होना, अंग्रेजी के कारण हीन भाव, शारीरिक दण्ड, मानसिक उत्पीड़न, स्वच्छता का अभाव, कन्याओं के लिये शौचालयों की पृथक व्यवस्था न होना आदि अनेक कारण हैं, जो शैक्षिक परिवर्तनों में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। आठवीं तक परीक्षा व मूल्यांकन की पूर्ण तिलांजलि आदि ऐसे कारण हैं, जो सर्वव्यापी शैक्षिक प्रसार में बड़ी बाधा है। सम्पन्न वर्ग की शिक्षा व्यवस्था भी दोषमुक्त नहीं है। शिक्षा ज्ञान केन्द्रित न होकर सूचना प्रधान, परीक्षा केन्द्रित हो गयी है। परीक्षा केन्द्रित व तीव्रमानसिक प्रतियोगिता केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था शिक्षा को तनावपूर्ण बना रही है। शिक्षा व्यवस्था में सह शैक्षणिक गतिविधियाँ, न्यूनता की ओर अग्रसर है। इनके निराकरण हेतु नित नये उपाय किये जा रहे हैं। परन्तु परिणाम तमाम वैधानिक उपायों व प्रयोगों के बावजूद पृथक मार्ग पर ही जा रहे हैं।

बाल अधिकार व बाल संरक्षण मात्र शिक्षा तक ही सीमित न रहे। बाल श्रम आज भी बाल शोषण का बड़ा केन्द्र है। गरीबी व पारिवारिक विघटन के कारण ही बालश्रम ही नहीं बाल अपराध संगठित-शोषक अपराधी वर्ग द्वारा बच्चों के अंग भंग कर भिक्षावृत्ति आदि जैसे गंभीर अपराध हैं जिनके प्रति बालकों को संरक्षण दिया जाना समाज का अभीष्ठ होना चाहिए। परन्तु क्या ये सभी वैधानिक उपाय ही बाल अधिकारों को प्रदान करने का एक मात्र मार्ग है। अन्ततः देश की आर्थिक प्रगति, गरीबी व अशिक्षा के कलंक से मुक्ति तथा विकासशील व परिवर्तनशील समाज ही इन वैधानिक उपायों को प्रभावी बना सकता है। आवश्यकता है ऐसे समाज के निर्माण में व्यक्तिवादी सोच का सामंजस्य भारतीय जीवन शैली व परंपराओं के साथ समन्वय स्थापित कर किया जाय। ❑

बच्चों की शिक्षा और परिवार

बच्चा पाठशाला में जाने लगने के पश्चात भी अपने घर का वातावरण संस्कारों के अनुकूल रखने का दायित्व माता-पिता का है। ऐसे संस्कार प्राप्त बच्चों को आयु के अठारह वर्ष पूर्ण होने के बाद उन्हें स्वतंत्रता रहे। मुझे विश्वास है कि संस्कारक्षम आयु में प्राप्त संस्कारों के कारण वह सभ्य, सच्चरित्र, स्वाभिमानी, राष्ट्राभिमानी नागरिक के नाते अपने को प्रस्तुत करेगा। जिससे अपना राष्ट्र भी बड़ा होगा। आखिर राष्ट्र भी क्या होता है? राष्ट्र यानी लोग ही होते हैं। People are the Nation और जैसे लोग होंगे वैसा ही राष्ट्र होगा। लोगों से ही राष्ट्र बनता है। किसी व्यवस्था से नहीं।

❑ मा. गो. वैद्य

बच्चों की शिक्षा का प्रारंभ उनके परिवार से ही होना चाहिये। इसके लिये माता का बड़ा महत्त्व है। वीर अभिमन्यु जब अपनी माँ के गर्भ में था, तभी उसने भगवान् श्रीकृष्ण से चक्रव्यूह का भेद करने की कला सीख ली थी। इस प्रसंग को कपोल कल्पित समझ कर उस पर अविश्वास करना योग्य नहीं। आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि गर्भ पाँच महिनों का होने पर भ्रूण को संवेदना प्राप्त होती हैं। अनेक शिक्षित महिला डॉक्टर गर्भ संस्कार केंद्र चलाते हैं। गर्भवती स्त्री के वाचन का, व्यवहारों का तथा संस्कारों का भी प्रभाव भ्रूण पर होता है।

माता का सान्निध्य

मेरी दृष्टि से बच्चों की आयु के छः वर्ष पूर्ण होने तक, उन्हें अपनी माता के साथ ही रहना चाहिये। मैं प्राथमिक वर्गों के पूर्व, शिक्षा देने वाली व्यवस्था के अनुकूल नहीं हूँ। आज शिक्षित महिलाएं नौकरी करती हैं। डेढ-दो साल के बच्चों को एक तो नौकरानी के हाथ सौंपती हैं, या पालनाघर में भेजती हैं और तीन साल पूरे होते ही उसे स्कूल भेज देती हैं। यह पद्धति संस्कारों की दृष्टि से ठीक नहीं है, आखिर शिक्षा का उद्देश्य क्या है। पैसे कमाने की कला सिखाना यह शिक्षा का उद्देश्य नहीं हो सकता। शिक्षा के कारण व्यक्ति, समाज का अच्छा, शीलवान, सभ्य नागरिक बने, यही शिक्षा का सही उद्देश्य है और जिस वातावरण में, वह संस्कारक्षम अवस्था में रहता है, उस वातावरण का बडा महत्त्व है। ऐसा वातावरण परिवार में ही निर्माण करना सुलभ है।

एक प्रयोग

बच्चों को अच्छे संस्कार प्राप्त हो इस लिये गर्भवती को भी अच्छी किताबें पढ़नी चाहिये। हमने अठारह वर्षों तक अपने घर में चातुर्मास में प्रतिदिन रात को 9 से 10 बजे तक अच्छी किताबों के सामूहिक वाचन का कार्यक्रम चलाया था। छोटे से छोटे बच्चों से लेकर, घर के सब लोग उस में

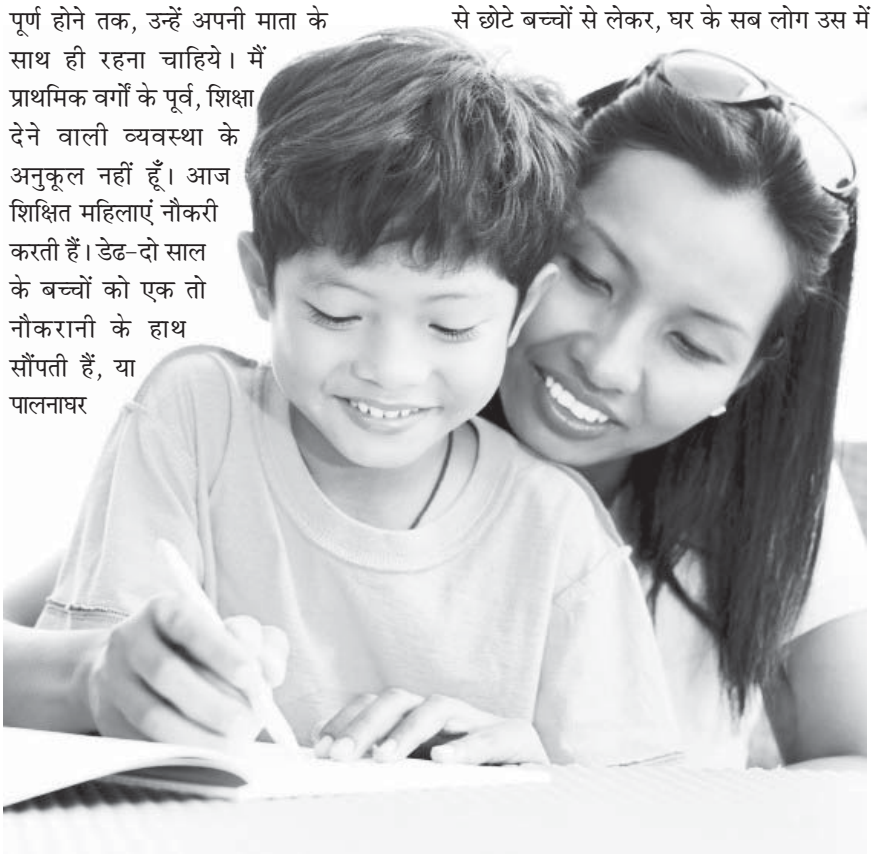

शामिल हो यह नियम था। अड़ोस-पड़ोस के कुछ परिवार भी आते थे। अच्छे विचारों का आप ही आप प्रक्षेपण होता था। इसके सुफल हमने देखा है। हर घर में इस प्रकार अपने परिवारजनों के लिये, वर्ष में कुछ समय तक यह सामूहिक वाचन का प्रयोग हो। परिवारजनों के ज्ञान की भी वृद्धि होगी और संस्कार भी होंगे। संस्कार का अर्थ अच्छा होना। जैसा है वैसा रहना यह प्रकृति है। पशु प्रकृति से ही चलते हैं। किन्तु मानव संस्कृति-सम्पन्न हो सकता है। इस हेतु संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संस्कार यानी वे उपाय जिनसे मनुष्य शीलवान, बलवान, विजिगीषु और देशाभिमानी बन सकता है। ऐसे मनुष्य ही अपने समाज का गौरव बढा सकते हैं।

नौकरी का सवाल

कोई सवाल करेगा कि क्या महिलाओं को नौकरी नहीं करनी चाहिये। मैं कहूँगा कि अवश्य करें। किन्तु छोटे से छोटा बच्चा छः वर्षों का होने के बाद। अच्छे परिवारों में महिलाओं को नौकरी की आर्थिक दृष्टि से आवश्यकता भी रहती नहीं। शिक्षित होने पर नौकरी करनी ही चाहिये यह कौनसी रीत है। महिलाएं निजी व्यवसाय भी कर सकती हैं। ट्यूशन क्लासेज भी चला सकती हैं। आयु की जिस अवस्था में बच्चा अच्छे संस्कार ग्रहण कर सकता है, उस अवस्था में संस्कार देने की व्यवस्था हो, यह मेरे

प्रतिपादन का मतलब है।

परीक्षा की व्यवस्था

बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार हो, यह बात अब सर्वमान्य हो गयी है। वह ठीक ही है। किन्तु छः वर्षों का होने के बाद ही वह पाठशाला जाये। आज के जमाने में गुरुकुल की व्यवस्था फिर से नहीं लाई जा सकती। किन्तु जैसा शिक्षा लेने का अधिकार है, वैसा ही शिक्षा देने का भी अधिकार हो। शासन के द्वारा परीक्षा लेने की व्यवस्था हो। चार वर्षों के बाद, तथा 7 वीं और 10 वीं के पश्चात ऐसी शासन पुरस्कृत, किन्तु स्वतः में स्वायत्त और स्वतंत्र व्यवस्था हो। प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक और माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर यह व्यवस्था बच्चों की परीक्षा लेगी। और उनके आगे बढने का मार्ग प्रशस्त करेगी।

राष्ट्र के लिये

बच्चा पाठशाला में जाने लगने के पश्चात भी अपने घर का वातावरण संस्कारों के अनुकूल रखने का दायित्व माता-पिता का है। ऐसे संस्कार प्राप्त बच्चों को आयु के अठारह वर्ष पूर्ण होने के बाद उन्हें स्वतंत्रता रहे। मुझे विश्वास है कि संस्कारक्षम आयु में प्राप्त संस्कारों के कारण वह सभ्य, सच्चरित्र, स्वाभिमानी, राष्ट्राभिमानी नागरिक के नाते अपने को प्रस्तुत करेगा। जिससे अपना राष्ट्र भी बड़ा होगा। आखिर राष्ट्र भी क्या होता है? राष्ट्र यानी लोग ही होते हैं। People are the Nation और जैसे लोग होंगे वैसा ही राष्ट्र होगा। लोगों से ही राष्ट्र बनता है। किसी व्यवस्था से नहीं। ❑

(पूर्व प्रवक्ता रा. स्व. संघ,
पूर्व संपादक-दैनिक तरुण भारत)

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, जिला बनासकांठा (गुजरात)

की ओर से दीपावली के पावन पर्व पर हार्दिक मंगलकामनाएँ

निवेदक

रत्तुभाई गोल
संगठन मंत्री, गुजरात

महेश कुमार वी. त्रिवेदी
जिला प्रमुख

हरजी भाई वाघेला
जिला मंत्री

अशोक भाई गडियार
प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य

अमृत भाई भाटी
उप जिला प्रमुख

भूराजी राठौड़
सह जिला मंत्री

वीरचंद भाई एल पटेल
जिला कोषाध्यक्ष

बाल अधिकार का सही परिप्रेक्ष्य

बच्चे किसी भी देश के अति महत्वपूर्ण संसाधन हैं। भारतीय बच्चे खास कर कुछ क्षेत्रों के बच्चे आमतौर पर पौष्टिकता के मामले में धनाभाव से जूझ रहे होते हैं। गरीबी से उनकी बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमता पर उलटा असर पड़ता है। देश में आज भी ऐसे बच्चों की बड़ी संख्या है जो निरक्षर हैं। खराब स्वास्थ्य, अपर्याप्त शैक्षणिक सुविधाएं तथा जीवनस्तर सुधारने के मौकों की कमी राजनीतिक बाजार में घोर प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करती है। इसका एक दुष्परिणाम यह होता है कि लोग सुविधाहीन वर्गों के लिए शिक्षा एवं नौकरी में आरक्षण की मांग करने लगते हैं। उससे सामाजिक कारवाई तथा उसकी प्रतिक्रिया के कारण समाज में तनाव और संदेह की स्थिति पैदा होती है।

❑ **बजरंगी सिंह**

बच्चों के संरक्षण और उनकी स्वतंत्रता तथा सम्मान के महत्व के बारे में सभी एकमत हैं। यह भारत के संविधान में भी निहित है। बावजूद इसके स्वतंत्रता के बाद से ही बच्चों के अधिकारों का घोर उल्लंघन हो रहा है। बाल सेवाओं की अदायगी में गंभीर खामियां हैं। ऐसे में उसके मुख्य सिद्धांतों को समझने एवं उनके अनुसरण की आवश्यकता है। वैसे इसके लिए सरकार सहित कई सामाजिक संगठन भी प्रयत्नशील हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं ने सुरक्षित बाल्यावस्था और बालाधिकारों के संरक्षण को भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया है। सामाजिक न्याय के मूल्यों को दोहराते हुए इसमें कहा गया है कि श्रमिकों, पुरुषों और स्त्रियों तथा बच्चों की कोमल स्थिति का गलत उपयोग नहीं किया जाता है और नागरिकों को आर्थिक विवशताओं के कारण ऐसा कोई कार्य व्यवसाय नहीं करना पड़ता है, जो उनकी आयु अथवा शक्ति के प्रतिकूल हों। इससे आगे शिक्षा के अधिकार के महत्व को स्वीकारते हुए धारा 45 में संकल्प लिया गया है कि संविधान के लागू होने के 10 वर्षों की अवधि के भीतर राज्य सरकार को सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा 14 वर्ष की आयु तक दी जायेगी।

इसके बावजूद आजादी के लगभग सात दशक से भी अधिक का समय गुजर जाने के बाद भी बच्चों को सभी तरह के अधिकार हम नहीं दे पाये। हक और उनके हासिल के बीच काफी अंतर है। वर्तमान में बाल्यावस्था के प्रति खतरे और गंभीर तथा गहरे हो गये हैं। आज अधिकाधिक बच्चे हाशिये पर आ खड़े हुए हैं और अनेक जोखिम क्षेत्र बढ़ रहे हैं। ऐसे बच्चों की संख्या काफी अधिक है, जिन्हें भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता है। स्वास्थ्य सुविधाएं तो हैं ही नहीं और यदि हैं तो खानापूर्ति भर है। ऐसे में उनका जीवन बहुत ही असुरक्षित है। भूख और कुपोषण के शिकार इन बच्चों का जीवन असमय में ही मृत्यु का शिकार हो जाता है।

आज बचपन पर तमाम तरह के हमले हो रहे हैं। बच्चे तरह-तरह के अभावों से गुजर रहे हैं, जिनका उन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पोषण और स्वास्थ्य संबंधी मूलभूत अधिकारों और सुविधाओं का लाभ सुलभ नहीं होने के कारण उनका विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता है। वे कुपोषित रह जाते हैं। वे असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के भंवर में फंस जाते हैं और वे असुरक्षित जीवन जीने के बाध्य हो जाते हैं। ऐसे नीरस एवं अरुचिकर काम करने लग जाते हैं, जिनसे बाहर निकल पाना कठिन हो जाता है।

आज जो तस्वीर उभर कर सामने आ रही है उससे यही पता चलता है कि हम भले ही वैश्विक अर्थव्यवस्था का नेतृत्व करने की तैयारी में हैं किन्तु भारत बुनियादी सुविधाओं के मामले में काफी पिछड़ा हुआ है। लोगों के पास व्यय योग्य आय की कमी उनके भविष्य यानी बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा को सबसे अधिक प्रभावित करती है।

बच्चों की पोषण योजनाओं में लगातार भारी निवेश होता रहा है। इसके बावजूद स्कूल में आने से पूर्व बच्चे या तो औसत से कम वजन के हैं या फिर उनका सही विकास नहीं हुआ है। यह चिंता का विषय है।

बच्चों में दोहरे शोषण की एक वैश्विक समस्या है और इससे विकासशील तथा विकसित दोनों देश प्रभावित होते हैं। भारत में अल्पपोषण की एक बड़ी समस्या है। लगभग 18 प्रतिशत स्कूल जाने के पूर्व तथा एक चौथाई बच्चे स्कूल जाने वाले बच्चे कुपोषित हैं। वर्तमान में आईसीडीएस और मध्याह्न भोजन का कार्यक्रम पूरे देश में लागू है। इसमें कम से कम एक वक्त का भोजन दिया जाता है। परन्तु बच्चों की जांच नहीं की जाती और अल्पपोषित बच्चों को दोहरा भोजन नहीं दिया जाता। जरूरत है कि हम स्वास्थ्य सेवा के साथ इन योजनाओं को चलायें।

बच्चे किसी भी देश के अति महत्वपूर्ण संसाधन हैं। भारतीय बच्चे खास कर कुछ क्षेत्रों के बच्चे आमतौर पर पौष्टिकता के मामले में

धनाभाव से जूझ रहे होते हैं। गरीबी से उनकी बौद्धिक तथा शारीरिक क्षमता पर उलटा असर पड़ता है। देश में आज भी ऐसे बच्चों की बड़ी संख्या है जो निरक्षर हैं। खराब स्वास्थ्य, अपर्याप्त शैक्षणिक सुविधाएं तथा जीवनस्तर सुधारने के मौकों की कमी राजनीतिक बाजार में घोर प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करती है। इसका एक दुष्परिणाम यह होता है कि लोग सुविधाहीन वर्गों के लिए शिक्षा एवं नौकरी में आरक्षण की मांग करने लगते हैं। उससे सामाजिक कारवाई तथा उसकी प्रतिक्रिया के कारण समाज में तनाव और संदेह की स्थिति पैदा होती है। सामाजिक रूप से सुविधाहीन लोगों के लिए इधर कुछ वर्षों में जरूर कई प्रयास हुए हैं, किन्तु उसके अच्छे परिणाम फिर भी नहीं आ सके हैं। इसका मतलब है कि हमारे क्रियान्वयन में ही कहीं चूक हो रही है।

समस्या अभी भी व्यापक है। देश अभी संविधान में निहित प्रावधानों को पूरी तौर पर लागू कर सकने में असफल रहा है। बच्चों के विकास के लिए अनेक योजनाएं एवं धन मुहैया कराने वाले स्त्रोत रहे हैं, परन्तु अब तक इन योजनाओं पर सही तौर पर ध्यान नहीं दिया गया। यही वजह रही कि हम अभी भी इस मामले में वांछित लक्ष्य से काफी दूर हैं। प्रारम्भिक धनाभाव का आभास संविधान निर्माताओं को भी था। इसलिए संविधान निर्माताओं ने आबादी के उन कुछ वर्गों के लिए शिक्षा और नौकरी में आरक्षण देने की व्यवस्था की जो समान स्तर से नीचे थे।

आज जब हम वैश्विक नेतृत्व की तैयारी में हैं तो प्रश्न उठता है कि हम जिस आर्थिक नीति के पक्षधर हैं, वह आम आदमी के हितों का कितना पोषण कर रहा है। अभी भी हम केवल अधिक से अधिक लोगों के पेट भरने के उपाय तक सीमित हैं। ऐसे में फिर बचपन कैसे सुरक्षित रहेगा और कैसे पलेगा तथा आगे बढ़ेगा? कैसे शिक्षित होगा और कैसे अपनी कुशलता के जरिये भविष्य की नींव रखेगा?

वर्ष 2011 की जनगणना की रिपोर्ट को मान लेते हैं तो अभी भी 84.8 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। ऐसे में लोगों तथा उनके बच्चों के सामने पेट भरने की सबसे बड़ी चुनौती है। हालिया रिपोर्ट बताती है कि 24 करोड़ के आसपास लोग भूख के शिकार हैं। भूख के साथ ही कुपोषण जुड़ जाता है। जो भारतीय बचपन को धीरे-धीरे कमजोर कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र की गणना के अनुसार भारत में वर्ष 2010 में 925 मिलियन लोग कुपोषण के शिकार थे। दुनिया के 25 प्रतिशत भूखे लोग अकेले भारत में निवास करते हैं। क्या इस स्थिति में बाल सरोकारों को सार्थक दिशा दी जा सकती है।

हमारा समाज बच्चों को उत्तम सुविधाएं देने में बुरी तरह असफल रहा है। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की उपेक्षा कर उन्हें ऐसे कामों में लगाना बदस्तूर जारी है जो उनके शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालने वाला साबित हो रहा है। मनुष्य के जीवन में बाल्यावस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें उसे सबसे अधिक सहायता, देखभाल, सहानुभूति और सुरक्षा की जरूरत होती है जिन्हें यह नहीं मिल पाता उनका व्यक्तित्व और भविष्य भी सुखी, संतुष्ट तथा सुरक्षित नहीं होता है। बच्चों की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था हम आज भी नहीं कर पाये हैं। शैक्षिक वार्षिक रिपोर्ट 2010 के मुताबिक बच्चों के स्कूल छोडने की राष्ट्रीय दर 3.5 प्रतिशत रही है। इस खतरे की असल वजह शिक्षा के प्रति लोगों की उदासीनता या फिर निपट गरीबी? ❑

(स्वतंत्र लेखक हैं)

क्या कानूनों से बनते हैं रिश्ते ?

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के चलते कानून बना कर शिक्षकों को शारीरिक दण्ड के विरुद्ध पाबंद किया गया है हम इसका विरोध नहीं करते मगर उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाना चाहिए। जन भावना है कि उससे शिक्षा का माहौल सुधारने में मदद नहीं मिली है। कानूनों के बनने के बाद शिक्षकों में उदासीनता का भाव पनपने लगा है जो आगे जाकर देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। सरकार को नए शिक्षा आयोग के चक्कर में नहीं पड़कर व्यवहारिक परिवर्तन करने चाहिए। शिक्षा मंत्रालय को शिक्षा आयोगों का कब्रिस्तान कहा जाता है। अनेक शिक्षा आयोगों की रिपोर्ट्स वहाँ दफन हैं। एक और आकर कुछ कर पाएगी ऐसा नहीं लगता।

जिस समय मैं यह आलेख लिख रहा हूँ, एक समाचार मेरे सामने है। चूरू, राजस्थान के एक निजी विद्यालय के एक शिक्षक ने अपने विद्यार्थी को इतना पीटा कि बच्चे का सिर फूट गया। मेरे सामने बाल अधिकार संरक्षण हेतु राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रकाशित विद्यालयों में शारीरिक दण्ड उन्मूलन हेतु दिशा निर्देश पुस्तिका भी रखी है जिससे में बच्चों को शारीरिक दण्ड से बचाने के कानूनी आधार के तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय, संवैधानिक, भारतीय दण्ड संहिता, शिक्षा का अधिकार कानून 2009, बच्चों की देखभाल व सुरक्षा कानून 2000, अनुसूचित जाति एवं जनजाति नियम 1989 तथा बच्चों के अधिकार संरक्षण कानून 1955 की वे धाराएं दी गई हैं जिनका उपयोग बच्चों को शारीरिक दण्ड देने वालों को दण्डित करने हेतु किया जा सकता है। इतने कानूनों के अस्तित्व में होने के बाद भी बच्चों के साथ हिंसा होना, कानूनों की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। प्रश्न यह है कि क्या गुरु शिष्य के रिश्तों को कानूनों द्वारा प्रगाढ़ किया जा सकता है?

शारीरिक दण्ड के प्रकार

बच्चों को शारीरिक दण्ड से बचाने से पूर्व हमें शारीरिक दण्ड को परिभाषित करना होगा। भारतीय दण्ड संहिता में बच्चों के शारीरिक दण्ड को ठीक से परिभाषित नहीं किया गया है। शिक्षा के अधिकार में बच्चों के शारीरिक दण्ड को तीन भागों में बांटा गया है। पहला भौतिक दण्ड, दूसरा मानसिक क्लेश तथा तीसरा भेदभावपूर्ण व्यवहार करना है।

भौतिक दण्ड में उस प्रत्येक क्रिया को सम्मिलित किया गया है जिससे बच्चे के शरीर को दर्द हो या किसी भी प्रकार की चोट पहुँचे। मुर्गा बनाना, कान पकड़ कर खड़ा करना, बेंच पर खड़ा करना, किसी स्थान पर बंद करना आदि भौतिक दण्ड में सम्मिलित है। बच्चे के प्रति कोई भी ऐसी बात कहना जिससे उसकी प्रतिष्ठा को ठेस लगे मानसिक क्लेश माना गया है। गाली देना, अपशब्द बोलना, शिक्षक की अपेक्षा के अनुकूल कार्य नहीं कर पाने पर भला-बुरा कहना, सीखने को प्रेरित करने हेतु बच्चे को शर्मिंदा करना, बच्चे के नहीं सीख पाने की स्थिति में कहे गए कटु वचन भी मानसिक क्लेश माना गया है। कोई शारीरिक कमी जैसे बहरापन, हकलाना आदि के कारण बच्चे के नहीं समझ पाने पर टिप्पणी करना भी मानसिक क्लेश की श्रेणी में आएगा। सामाजिक, जातीय, वर्ग, धर्म, लिंग, शारीरिक अक्षमता आदि के आधार पर भोजन, समान आदान प्रदान, खेलकूद आदि गतिविधियों के समय

बच्चे-बच्चे में अन्तर करने को शारीरिक दण्ड मानकर अपराध की श्रेणी में रखा गया है। भारतीय विद्यालयों में बालक हित में समझे जाने वाले कई उपाय आज अपराध की श्रेणी में हैं। परिवार में गहरे रंग के बच्चे को कालिया तथा गोरे रंग के बच्चे को गोरिया कह कर पुकारने की प्रथा भी रही है। वर्तमान कानून में ऐसा नामकरण शारीरिक दण्ड की श्रेणी में ठहराया जा सकता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः

बच्चों के अधिकार तथा उनकी रक्षा में कानूनी व्यवस्था पश्चिम की देन है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणी पश्यन्तुः मा कश्चित दुख भाग भवेत, का विश्व में उदघोष करने वाला भारत स्वाभाविक रूप से मानव अधिकारों का संरक्षक रहा है। मानव ही नहीं प्राणी मात्र की रक्षा करने के संस्कार बचपन से बच्चे में भरे जाते रहे हैं। बालगोपाल कह कर बच्चे को परिवार में सवार्धिक महत्व दिया जाता है। परिवार में बच्चे को लालन पालन की जिम्मेदारी माता-पिता से अधिक दादा-दादी, ताऊ-ताई आदि की हुआ करती थी। पाँच वर्ष से पूर्व बच्चे को विद्यालय भेजने की परम्परा नहीं थी। प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था में माता-पिता का दायित्व गुरुपत्नी व गुरु ही उठाया करते थे। अमीर-गरीब सभी बच्चे साथ पढ़ते थे। आश्रम में सभी बराबर होते थे क्योंकि किसी बच्चे से शुल्क लेने का कोई प्रावधान नहीं था।

समय बदलने के साथ सामाजिक मान्यताएं बदल गई है। आज हम वैश्वीकरण के युग में रह रहे हैं। भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली समाप्त होते जा रही है। शिक्षा का पूर्णरूप से बाजारीकरण हो गया है। जितना पैसा उतनी शिक्षा। शिक्षा का ध्येय ही बदल गया है। संस्कार देने वाली शिक्षा की मांग नहीं है, बड़ी कम्पनी में प्लेसमेन्ट दिलाने वाली शिक्षा की मांग है। बच्चा सीख रहा है या नहीं इसका मूल्यांकन लिखित परीक्षा द्वारा होता है। पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे को अक्षर ज्ञान बच्चे के हित में नहीं होने पर भी तथाकथित अच्छी स्कूलों ने पूर्व प्राथमिक कक्षाओं से पुस्तकों के साथ साथ परीक्षा का आतंक भी पैदा कर रखा है।

यह स्थिति न तो भारतीय संस्कृति के अनुकूल है और न ही स्थाई। शिक्षा का कानून बना कर सरकार स्वयं अपनी पीठ भले ही थपथपा ले मगर इससे समाज का कोई भला हुआ हो ऐसा नहीं लगता। शिक्षा क्षेत्र में फैली विषमता में कोई अन्तर नहीं आया है। नई प्रकार की परेशानियां सामने आ रही हैं। शिक्षा का कानून बना कर सरकार ने शिक्षा पर एकाधिकार तो कर लिया मगर उसे सम्भाल पाना सरकार के बूते की बात नहीं है। शिक्षा के कानून से इंस्पेक्टर राज का विस्तार हुआ है। इससे प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार व जन भागीदारी कम होगी।

भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा का अर्थ बालक में निहित गुणों को पूर्णतः विकसित होने का अवसर प्रदान करना है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि बालक को पढ़ाने का प्रयास करना व्यर्थ है। आज विद्यालयों में पढ़ाने के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं। भारतीय पद्धति कहती है कि भाषा के अतिरिक्त अन्य कोई विषय किताबों से नहीं सिखाया जा सकता है मगर हमनें खेल तथा नैतिक शिक्षा के लिए भी पुस्तकें व लिखित परीक्षा तैयार करली है।

परीक्षा द्वारा मूल्यांकन

शिक्षक का मूल्यांकन इस बात से होना चाहिए कि वह अपने विद्यार्थियों की कितनी मदद करता है। विद्यार्थियों के साथ उसकी कितनी आत्मीयता है। ऐसा नहीं होकर लिखित परीक्षा द्वारा मूल्यांकन होता है। परीक्षा की तैयारी में शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों ही चिन्ताग्रस्त रहते हैं। शिक्षक पढ़ाना

चाहता है और बच्चा पढ़ना नहीं चाहता, इससे कक्षा में हिंसक स्थिति बनती है। शिक्षा के बाजारीकरण ने शिक्षा में हिंसा को उकसाने का काम किया है। आवश्यकता कानून का भय पैदा करने के बजाय शिक्षा का उचित माहौल पैदा करने की है।

सीखने को प्रेरित करने के बजाय पढ़ाने के प्रयास बच्चे के मन को कितना आहत कर सकते हैं यह बात महान आविष्कारक थामस अल्वा एडिसन के स्कूली अनुभव से सामने आती है। घटना उन्नीसवीं शताब्दि के अमेरिका की है। थामस को लगभग सात वर्ष की उम्र में स्कूल में भर्ती कराया गया था। थामस अपने विचारों में खोया रहता था। पढ़ाई में थामस का मन बहुत कम लगता था। लिखने-पढ़ने में थामस को कठिनाई होती थी। स्कूल जाते तीन माह होने पर भी थामस, शिक्षक की अपेक्षा अनुसार, नहीं सीख पाया था। एक दिन परेशान होकर शिक्षक ने उसे मूर्ख कह दिया। उस समय शारीरिक दण्डरोधी कोई कानून नहीं थे। शिक्षक के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हुई मगर उस दिन के बाद थामस कभी स्कूल नहीं गया। लिखना पढ़ना जो भी सीखा घर में माँ के द्वारा सीखा। स्कूल ने जिसे असफल घोषित कर दिया था वही थामस एडिशन विश्व का महानतम आविष्कारक बना। अमेरिका में 1093 पेटेन्ट लिए। यदि उसे ठीक से अध्ययन करने का अवसर मिलता तो हो सकता है परिणाम कुछ और अच्छे होते।

महत्वपूर्ण हैं प्रधानमंत्री के विचार

यह प्रसन्नता का विषय है कि आज भारत में शिक्षा की सही समझ रखने वाले प्रधानमंत्री हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पाँच सितम्बर को शिक्षक दिवस पर सन्देश दिया था कि शिक्षक को कक्षा के प्रत्येक बालक को उसकी गति के अनुसार आगे बढ़ाना चाहिए। स्पष्ट है कि श्री मोदी ने शिक्षा को बाल केन्द्रित होने पर जोर दिया है। आज शिक्षा परीक्षा केन्द्रित है। इसी कारण विद्यार्थी, शिक्षक व अभिभावक तीनों ही परेशान हैं।

जो अंग्रेजो के शासन में नहीं हुआ वह आज हो रहा है। भारतीय भाषाओं के विद्यालयों की तुलना में अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में नामांकन अधिक हो रहा है। गलत नीतियों के कारण मिथ्या धारणा बन गई है कि कुछ बनना है तो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ना आवश्यक है। अभिभावक अपना पेट काटकर भी बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में भेज रहे हैं। आवश्यकता से अधिक भारी पाठ्यक्रम बच्चे का कचूमर निकाल देता है, भाषा की कठिनाई उसके प्राण ही निकाल देती है। बच्चा एक चलती फिरती लाश में बदल जाता है। शिक्षक व अभिभावक दोनों ही बच्चे से परिणाम चाहते है, परिणाम देना बच्चे के बस में नहीं होता। मैकालयी सोच से विद्यालय में हिंसा की स्थिति बनती है। चूरू की घटना अंग्रेजी माध्यम विद्यालय की ही है।

राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता

उन्नीसवीं शताब्दी में मैकालयी शिक्षा लागू होने के साथ उसका विरोध प्रारम्भ हो गया था। मैकालयी शिक्षा के समान्तर भारतीय शिक्षा के प्रयास प्रारम्भ किए गए थे। उन प्रयासों को राष्ट्रीय शिक्षा कहा गया है। राजनारायण बसु (7 सितम्बर 1826 से 18 सितम्बर 1899) को राष्ट्रीय शिक्षा का जनक कहा जाता है। राजनारायण बसु ने उन्नीसवीं शताब्दि में राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में जो व्यवस्था दी वह शिक्षा के अधिकार से आगे की है।

नि:शुल्क व रुचिकर शिक्षा उपलब्ध कराना राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम सोपान है। राष्ट्रीय शिक्षा में बच्चों के लिए शारीरिक दण्ड निषेध है। इससे विद्यार्थियों व शिक्षकों के मध्य मित्रता का वातावरण उत्पन्न होता है। राष्ट्रीय शिक्षा रटने व परीक्षा में उगल देने का विरोध करती है, शिक्षकों व बच्चों के बीच संवाद पर जोर देती है। बच्चों को संबोधित करते में सरल मातृभाषा पर जोर देती है, जिससे कक्षा का सबसे कमजोर विद्यार्थी भी कक्षा में रुचि ले सके।

राष्ट्रीय शिक्षा बच्चों में जिज्ञासा उत्पन्न करने पर जोर देती है जिससे बच्चे प्रश्न पूछकर अपनी समझ को मजबूत कर सकें। राष्ट्रीय शिक्षा में मानसिक क्षमता बढ़ाने में शारीरिक क्षमता के योगदान को स्वीकार किया गया है। विद्यालय में खेल के मैदान व जिम्नेजियम आदि का विकास कर बच्चों को शारीरिक क्षमता बढ़ाने का अवसर प्रदान किया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा में चरित्र निर्माण को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना गया है। चरित्र ही मानव को मनुष्य बनाता है। राष्ट्रीय शिक्षा में अधिगम हेतु बच्चों को सभी भौतिक सुविधाएं दी जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा में व्यक्तित्व विकास हेतु सह शैक्षिक गतिविधियों जैसे वाद विवाद, नाटक, आदि की भूमिका को स्वीकारा गया है। राष्ट्रीय शिक्षा से संस्कारित हुआ बच्चा किसी भी पद या किसी भी क्षेत्र में जाएगा तो राष्ट्रहित में कार्य करेगा। गुजरात के एक विद्यालय में प्रयोगिक तौर पर अपनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के परिणाम उत्साहवर्धक रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के चलते कानून बना कर शिक्षकों को शारीरिक दण्ड के विरुद्ध पाबंद किया गया है हम इसका विरोध नहीं करते मगर उसके प्रभाव का अध्ययन किया जाना चाहिए। जन भावना है कि उससे शिक्षा का माहौल सुधारने में मदद नहीं मिली है। कानूनों के बनने के बाद शिक्षकों में उदासीनता का भाव पनपने लगा है जो आगे जाकर देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। सरकार को नए शिक्षा आयोग के चक्कर में नहीं पड़कर व्यवहारिक परिवर्तन करने चाहिए। शिक्षा मंत्रालय को शिक्षा आयोगों का कब्रिस्तान कहा जाता है। अनेक शिक्षा आयोगों की रिपोर्ट्स वहाँ दफन हैं। एक और आकर कुछ कर पाएगी ऐसा नहीं लगता। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक हैं)

भारत में बाल न्यायिक कानून - 2014 अवांछनीय एवं अप्रासांगिक

अमेरिका एवं यूरोपीय देशों की लम्बे समय से बिखरती एवं अव्यवस्थित सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था के कारण ही बच्चों के अधिकार 'मानवाधिकार' में सम्मिलित किये गये हैं। इसके लिए वहाँ की सरकारों ने कई प्रकार के बाल अधिकार कानून बनाये और बालकों की सुरक्षा को कई प्रावधानों के माध्यम से संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत समाज में बच्चों को अठारह वर्ष से कम आयु के महत्वपूर्ण प्रतिभागी के रूप में पहचान मिलनी चाहिए। माता-पिता बच्चे की मूलभूत आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं करें, बल्कि उनका बच्चे के साथ अच्छा सामंजस्य हो। यह कानून भारत में बच्चों के लालन-पालन की आदर्श परम्परा, माता-पिता के अधिकारों एवं हमारी चिर-प्राचीन परिवार संस्था पर किया गया षड़यंत्र है, जिसे भारतीय परिपेक्ष्य में कभी सराहा नहीं जा सकता है।

❑ डॉ. रेखा भट्ट

अमेरिका एवं यूरोपीय देशों की लम्बे समय से बिखरती एवं अव्यवस्थित सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था के कारण ही बच्चों के अधिकार 'मानवाधिकार' में सम्मिलित किये गये हैं। इसके लिए वहाँ की सरकारों ने कई प्रकार के बाल अधिकार कानून बनाये और बालकों की सुरक्षा को कई प्रावधानों के माध्यम से संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत समाज में बच्चों को अठारह वर्ष से कम आयु के महत्वपूर्ण प्रतिभागी के रूप में पहचान मिलनी चाहिए। माता-पिता बच्चे की मूलभूत आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं करें, बल्कि उनका बच्चे के साथ अच्छा सामंजस्य हो। माता-पिता उनके रखरखाव और शिक्षा के साथ-साथ, उनकी भावनात्मक और सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ भी पूरी करें। मानवाधिकार द्वारा बच्चों के अधिकारों को परिभाषित करने की आवश्यकता पड़ी। क्योंकि मानवाधिकार आयोग यह मानता है कि बच्चे अपनी जिन्दगी के निर्णय स्वयं नहीं ले पाते, माता-पिता या संरक्षक ही परिस्थितियों को देखते हुए बच्चों के जीवन को नियंत्रित करते हैं, जिससे वे आक्रामकता के शिकार होते हैं और उन्हें शारीरिक व मानसिक क्षति पहुँचती है। अत: बच्चों को भी जिम्मेदार नागरिक मानते हुए सब अधिकार मिलने चाहिए।

अधिकांश यूरोपीय देशों में इन अधिकारों को पहचाने मिलने तथा लागू करने की आवश्यकता वर्षों पहले ही पड़ गई थी, जब वर्ष 1979 में सबसे पहले स्वीडन में घर पर अभिभावकों द्वारा बच्चों को दण्डित करने पर रोक लगाई गई। इसके बाद कई देशों में इसे लागू किया गया, जब घर में बच्चों की स्थिति कई कारणों से बदतर होने लगी। ये कारण थे - माता-पिता के बढ़ते तलाक, सौतेले माता या पिता का बुरा बर्ताव, अविवाहित एकल अभिभावक द्वारा बच्चे के पालन-पोषण की स्वीकृति, माता-पिता के आर्थिक रूप से सक्षम न होने पर किसी संरक्षक को बच्चे की जिम्मेदारी सौंपी जाना तथा फोस्टर अभिभावक द्वारा बच्चे का दायित्व लिया जाना।

इन स्थितियों में वहाँ बच्चों के साथ भेदभाव, हिंसा व उपेक्षा बढ़ते गये। विकलांग, शरारती व अपराधी प्रवृत्ति के बच्चों के नियंत्रण के लिए सरकार की सहायता लेनी आवश्यक हो गई। बच्चों के लिए समाज सेवा केन्द्र, बाल सुरक्षा विभाग, बाल सुधार गृह स्थापित किये गये। बाल न्याय कानून लाया गया तथा बाल न्यायालय में अलग से पैनल नियुक्त किये

गये। इनमें 12-18 वर्ष के बीच की आयु के बच्चे, जिनके विरुद्ध अपराधिक अभियोग लगाया गया हो, उन्हीं की सुनवाई होती है। ऐसे बच्चों को न्यायिक व कानूनी सुरक्षा मुहैया करवाई जाती है। ऐसे बच्चे जो नैतिक खतरे में है, भीख मांगते हुए, चन्दा मांगते हुए या इधर-उधर भटकते पाये जाते हैं, उन्हें वहाँ 24 घण्टे के अन्दर आपातकालीन सुरक्षा व आवासीय व्यवस्था दी जाती है।

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के साथ-साथ मानवाधिकार आयोग के दबाव में यहाँ की पूर्ववर्ती सरकार असहाय बनी रही और इसी दबाव में कई नवीन कानून पारित करने की दिशा में आगे बढ़ रही है, जो भारतीय संस्कृति, समाज व्यवस्था के लिए घातक है।

यही 'बाल न्यायिक कानून - 2014' भारत में सरकार लागू करने जा रही है, जिसके अन्तर्गत घर में बच्चों को दण्डित करने वाले माता-पिता को कानूनन 5 वर्ष की जेल का प्रावधान है। भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में कानून व्यवस्था की लचर स्थिति है तथा न्यायिक प्रक्रिया भी अत्यन्त जटिल एवं लम्बा समय लेने वाली है, यहाँ के गरीब तबके में बच्चे पारिवारिक आय के जरिये माने जाते हैं। ऐसे में सरकार द्वारा बच्चों की देखभाल व सुरक्षा के संवैधानिक उपाय यहाँ कारगर होंगे, यह आवश्यक नहीं।

व्यक्तिगत अधिकारों के माध्यम से समाज को संवैधानिक नियमों में बांधा तो जा सकता है, किन्तु बल से या सख्ती से नैतिकता का विकास नहीं किया जा सकता है। आजकल भारत में भी बच्चों के लिए विषम परिस्थितियाँ पैदा होने लगी हैं। किन्तु भारत में अभी ऐसे मामले नहीं है, जहाँ बच्चों को सरकार द्वारा अपने ही माता-पिता से सुरक्षा की गुहार करनी पड़े। अभी भारत में ऐसे माता-पिता की संख्या नगण्य या बहुत ही कम है, जो अपनी कुण्ठा, अवसाद या विवाद का शिकार अपने बच्चों को बनाते हैं। अत: भारत में अभी भी बच्चों के अधिकार से पहले उनके कर्तव्य पर विचार करने की आवश्यकता है।

हम सभी विकसित देशों का अनुकरण तो कर रहे है, किन्तु उनकी कार्य क्षमता, दक्षता व ईमानदारी के स्थान पर केवल उनकी जीवनशैली को ही हमने विकास का पर्याय मान लिया है। यह तथ्य भी ठीक है कि भौतिक विकास की इस दौड़ में भारत में पारिवारिक मूल्यों का क्षरण हुआ है। बच्चों और माता-पिता के बीच की दूरी बढ़ी है। परन्तु अभी भारतीय समाज व परिवार व्यवस्था पूर्ण मजबूत आधार के साथ खड़ी है। बच्चों के अधिकार का कानून, माता-पिता के अधिकारों का हनन करता है। यह बच्चों से उनकी दूरी और ज्यादा बढ़ायेगा, घटायेगा नहीं। माता-पिता द्वारा नियंत्रण के अभाव में वे सृजनशीलता व रचनात्मकता से दूर होंगे। एकाकी व प्रतिबन्धित माहौल में दिशाहीन होंगे, कई मनोविकृत्तियों के शिकार हो जायेंगे। बाहरी संरक्षण में वे उग्र होकर परिवार तथा समाज के लिए विनाशकारी साबित हो सकते है तथा वे अल्पायु में ही वयस्क होकर अपराध व हिंसा की ओर बढ़ते जायेंगे।

बच्चों पर नियंत्रण का अर्थ केवल बच्चों पर दबाव बनाये रखना ही नहीं है, बल्कि उन्हें निरंकुश होने से रोकना है। आजादी बच्चों को अधिकार देती है। आधुनिक समय में प्रत्येक रिश्ते में खुलेपन को सराहा जाता है, अत: परिवार के हर छोटे-बड़े कार्यों में निर्णय व हस्तक्षेप का अधिकार बच्चों को स्वत: प्राप्त हो जाता है। यह कानून माता-पिता के सम्मान व शिष्टाचार जैसे संस्कारों से वंचित करता है, उन्हें बड़ों के प्रति अपने दायित्वों का अहसास नहीं होने देता। आधुनिक सुविधाओं और पारिवारिक स्वच्छन्दता में अपनी दुर्बलताओं को पहचानने और अपनी क्षमता के विकास के पर्याप्त अवसर बच्चों को नहीं मिल पाते।

माता-पिता द्वारा बच्चों को उनके कर्तव्यों का बोध कराना अपराध नहीं कहा जा सकता। बढ़ते हुए व्यसन के प्रचलन तथा दुर्भावना की मनोदशा में बच्चे को मानसिक या शारीरिक यंत्रणा निश्चित रूप से दण्डनीय अपराध है। पारिवारिक प्रकरण उजागर होने में कठिनाई आती है, अत: अधिकांश दोषी माता-पिता पुलिस की गिरफ्त में नहीं आ पाते। ऐसी स्थितियों के लिए यहाँ चाइल्ड हेल्प लाईन व कानूनी सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार की संस्थाओं को और अधिक सक्रिय, जागरुक व गहन जाँच परख बनाने की आवश्यकता है।

माता-पिता व कानून दोनों यह जाने कि अपने कर्तव्य ही दूसरों के अधिकारों को प्रभावित करते हैं। हम अपने क्षमा, दया व त्याग के आचरण से, बच्चों को परिपक्व होने से पहले, उनकी जिम्मेदारी का बोध करवायें तभी वे अपने अधिकारों का महत्व स्वत: पहचानेंगे। भारत में परिवार बच्चे के संस्कारों की पाठशाला है। यह कानून से संचालित नहीं की जा सकती, यहाँ माता-पिता ही बच्चे के शिक्षक है। परिवार के बड़े अनुभवी लोगों को जीवन भर सही-गलत निर्णय लेते देखना बच्चों के लिए प्रेरणादायक होता है। उनका श्रमसाध्य, सादा व साफ-सुथरा जीवन बच्चों को मेहनती व स्वावलम्बी बनाता है। बड़ों के ज्ञान-विज्ञान व जड़-चेतन की विवेचना, उनमें नई सोच पल्लवित करती है। उनके दिये संस्कार, जीवन में कठिनाइयों से जूझने में सहायक होते है। हमारी परम्पराएँ व संस्कार ही पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार को एक सूत्र में पिरोये रखते है।

विश्व के हर कोने में, हर क्षेत्र में आज भारतीय युवा पीढ़ी की पहुँच है तथा अपनी पहचान है। इस युवा शक्ति की नींव भारत की पारिवारिक संरचना व परम्परा में निहित है। अक्षुण्य पारिवारिक आदर्श ही भावी पीढ़ी को सशक्त बनायेंगे, तभी देश को आर्थिक व सांस्कृतिक सुदृढ़ता मिलेगी।

अत: अभी भारत में कानून द्वारा माता-पिता के अधिकारों को प्रतिबन्धित करने की अपेक्षा ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में निवास करने वाले आर्थिक रूप से कमजोर शोषित, मजदूर वर्ग एवं अशिक्षित परिवारों में शिक्षा और समानता का प्रसार करने तथा उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान करने की आवश्यकता है।

यह कानून भारत में बच्चों के लालन-पालन की आदर्श परम्परा, माता-पिता के अधिकारों एवं हमारी चिर-प्राचीन परिवार संस्था पर किया गया षड़यंत्र है, जिसे भारतीय परिपेक्ष्य में कभी सराहा नहीं जा सकता है। ❑

(व्याख्याता, रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

Bharatiya Parampara and upbringing of Children

We should do nothing at all that shall disturb the great tranquillity in Bharat. When children are to be corrected, if they have to be punished in some cases, we must do so. We cannot afford to simply and blindly imitate what people do in Europe and bring destruction to our society. Why we should worry about punishing children or for that matter any one? We do have theories of punishment given to us by the Acharyas and all that we have to do is to take lessons from them. Laisses fare is not going to make any one civilised, and not controlling and punishing children is not going to make one cultured.

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Bharatiya parampara had been facing challenges from many quarters for more than a thousand years. It began with the Muslim rule for some eight hundred years, and then for another two hundred years it was the Europeans. After all these years of alien rule, Bharat continued to be under the rule of European modelled people, who continued to carry the luggage of Euro centrism like some obstinate mule, even after a supposed 'independence' and home rule. In short, these euro centric minds not only continued to remain mentally subjugated, but also whole heartedly treated anything and everything of Bharat as obsolescence. This still remains as the fundamental challenge to Bharatiya Parampara when it comes to 'intellectual existence'.

This has a wide and far reaching impact as well as consequence. Our entire curriculum, the so called teaching and learning programme still continues to treat Bharatiya Parampara as anachronistic, unwanted and foolish. Since the present majority still suffers from such illusion of European euphoria, the challenges remain an ongoing torture as well.

Europe and their education

People claim that education in Europe is advanced and systematic. On the face of it, this may seem convincing, except when one ventures into deep understanding of what education ought to be. Truly enough, they did make tremendous advancement in most empirical studies, and they do stand much ahead in science and technology as compared to many other non-European nations. In short, they still do have much better technological infrastructure including finance.

But then, the picture changes when one looks at their society, social situations, institutions in society and individual values and their co-existence. Strictly and honestly speaking, can any European claim that their societies are happy? (I would like to sum up the whole phenomena in one word, 'happy'). Why people live with agitated minds and depend on all kinds of tranquilisers? What went wrong? Basically, something must be wrong with their ways of teaching, which directly shall mean that something

must be wrong with the objectives of education in their society.; I would say that with all these infrastructure and funding towards learning and teaching, if people still cannot be made happily living, then there must be something wrong with such system of teaching and learning.

In Bharat, perhaps every one including the Bappu of late had been saying that Education must be man making. Bappu very rightly said that education ought to be a drawing out activity and not a pouring in activity. In short, education must be man making, or making man human. An education pattern that fails to make man a human being shall not be welcome.

Bharatiya knowledge tradition

For Bharat, the knowledge tradition begins with the Vedas and the Upanishads. As a matter of very practical fact, we have to begin from the Vedopanishadic knowledge tradition for everything in Toto. This indeed has its challenges as the Vedic knowledge is not instantly accessible to any one and every one, it can only be achieved through a proper Guru. Maharishi Aurabindo spells out in detail about these phenomena, and why this had been made so, through his powerful book, 'Secret of the Vedas'. The composers of the Vedas did not want it to go in the wrong hands, and hence they made it enigmatic, and thus it had never gone into wrong hands for tens of thousands of years of its existence. What I would like to assert is only one thing, the Vedopanishadic knowledge tradition becomes fundamental to anything that of Bharat.

Perhaps the first instruction as to how education must be done, and what must be called knowledge appears in the 3rd century BC text of Maharishi Gautama, the 'Nyaya Sutra'. The Upanishadic mantra 'Sahanavavatu…..' predates this, and such practices were long existing before Gautama. The significance with Gautama comes in just one expression in this context, and that is his categorical insistence that Education must affect the one who learns. Knowledge, if does not affect the knower, is no knowledge. Affecting here means refining, polishing, and making he learner cultured and civilised, and we call this process as 'Sanskritavatkarana' and person with knowledge becomes a Sanskrita or Sanskari. In short, education ought to be a process of refining individuals.

Present education in Bharat

It was already stated in the very first paragraph that the present pattern of teaching and learning in Bharat is predominantly European. To what extent Bharatiya Sanskriti could be mixed into this is a question to be discussed, but it may be said that Bharat also is just making her society in the European pattern and styling her citizens in an alien format. This has its own impacts in our society, and it already had its impact, as a matter of fact. Yet, how we survive is only because of Dharma, and nothing else.

Upbringing of children

How children are to be taught in the schools, how children are to be brought up in the homes etc. are some questions that concern the future of our nation. The prime question hers becomes, are we to punish children, or are we to follow the theory of 'naturalism' as suggested by Europe? In Europe, punishing a child, which is beating etc., is a punishable offence. Should we say that this is good or not good?

When you ask a teacher, he normally says that it is very difficult to control children if the child does not have a fear of being punished for a wrong thing he does. As a matter of fact, this fear of punishment is what keeps most people from committing crime, especially in most European societies. The more stringent and strict the laws are made, the more disciplined becomes the society, is their theory, and not ours. The US keeps giving imprisonment for fifty, and even sometime hundred years, and it looks funny to our minds. And still, they are very strong advocates of children's freedom! This is where the whole things become contradictory. On the one hand European society clamours for children's freedom, women's freedom etc. and on the other hand, they keep making their penal laws more and more rigid and strict. Out in the public they speak a lot about human rights, but inside their jails, there is nothing like human rights. So the Europeans do have not just double standard, but multi standards, and they often are contradictory.

The discussion here is whether or not to punish children in whichever way. There are arguments favouring this, and the chief argument is that there is a possibility of teacher's cruelty to children. This may have its point, but is it always the case in Bharat that teachers are revengeful to children? Can we say that teachers take out their anger in children on a routine? Such cases are indeed exceptions, and we have machinery to correct such things. If the children can be punished, then a wrong doing teacher

shall be better punished.

Parents are also of the opinion that their children must not be beaten, as they are of the impression that it shall be not civilisation or modern. But parents are the best authority to punish children, because they are always with the children and can make the child realise his mistake and why he got punished. Parents are to correct children on a regular basis and time to time, and if they wish to do away with scolding and punishing, they become instrumental in creating irresponsible and undisciplined citizens. We should not forget that Bharat also has a theory of 'Dandaniti'. It is the duty of parent to correct children, and as Dandaniti suggests, thy must resort to sama, dana, bhedya and even danda.

Family relations

There is a marked difference in Bharatiya family relations and European family relations. We may say that the Europeans do not have family relations at all, given what we understand of family. Regarding the 'formation' of society, the Europeans gave theories like social contract (John Locke, Rousseau) and according their social contract theories, individuals come to coexist through a contract for mutual betterment. None other than Pujniya Guruji comments on this through his book 'Bunch of Thoughts', and what Pujniya Guruji says is very significant. He says that Bharatiya society exists through a concept of sacrifice, and he implicitly suggests the Upanishadic mantra, 'Tena Tyaktena Bhunjita'. Apart from this, co-existence had been our epistemology, and it is only natural for Bharatiyas to live through self-less performances of sacrifices.

Thus, in families of Bharat, individuals co-exist, and they perform sacrifices instead of self-oriented activities. They find happiness in doing something for the others, even through negating their own comforts. On the other hands, in European societies, children live as individual units, and right from the childhood they live separate. People do not even let children sleep in the mothers and fathers bed rooms, they are left with their own rooms. The intimacy hardly develops, and when the children grow up, they go of their own, typically like in the animal world. But this is not so in Bharat, we still have many joint families and people do live comfortably in such joint families. I had talked to many people living in joint families and they all speak in support of such joint families. This is the strength of co-existence.

However, the cases of nuclear families are in the increase and joint families are becoming less and less. This simply is because of the influence of European pattern on our existence, and our educators had ever been failing to show Bharatiya tradition to society. In short, the family relations, the society and the values in Bharat are entirely different from those in Europe.

Should children be punished?

Now to the direct and final question; should children be beaten both in the houses and schools? A simple and direct answer to this question shall depend on what kind of adults one wants to make out of the children. If one supports the European model of care free and undisciplined society, then let them be in support of the theory of 'naturalism' or 'laisses fare' and say that children should not be beaten anywhere. But for Bharat, this is unacceptable. We do not want our future society to be carefree and undisciplined, we do not support laisses fare states of affairs, we are the most ancient society in the world which still is coexisting and shall ever be co-existing. We have our own distinct family relations, distinct knowledge tradition, and distinct value system and family relations. We sum up the entire knowledge of righteousness in just one concept, Dharma. And when we are told that 'Ahimsa Paramo Dharma' it is also told that 'Dharma Hatya Tathaiva Ca'. Ahimsa is a great Dharma, but to kill to save Dharma is also great Dharma. Sometimes we forge the later part.

We should do nothing at all that shall disturb the great tranquillity in Bharat. When children are to be corrected, if they have to be punished in some cases, we must do so. We cannot afford to simply and blindly imitate what people do in Europe and bring destruction to our society. Why we should worry about punishing children or for that matter any one? We do have theories of punishment given to us by the Acharyas and all that we have to do is to take lessons from them. Laisses fare is not going to make any one civilised, and not controlling and punishing children is not going to make one cultured. Children should be punished when they are to be punished, and citizens also should be punished when they are to be punished. That is the way healthy society shall go on existing. Let us stop imitating and copying Europe for once and for all. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Rights & Traditions for Children

Our future lies with younger generations looking bright and promising. Change in society is very essential so as to motivate younger generation to follow right path. It's our duty, every one of us, to take care of every young child to nurture them in proper manner. Similarly every one of us should take care of other aspects for future generations to come. "During exam time students focus on their studies leaving all comforts similarly we should focus on betterment of society"

❑ **Prof. A. K. Gupta**

Rights is a word which enlightens power of self in the present legal framework where as Traditions compels us to think about our rich heritage which we enjoyed through our long journey of civilization. In present time it may be dilemma for a child to know about both and select right path to follow. Constitution of India provides equal right to all the citizen of India including different segments of the society e.g. weaker sections, backward sections, women and children etc to name a few. However Practical and Hard facts of life compel a child to move away from traditional right path.

This can be understood by story of a typical child now grown up and sharing his part of duties in the world. He was born in a state where his parents migrated from other state. Typically his parents belonged to economically lower section of the society where one finds it just enough to pull on routine activities. His mother supported the family by joining service so as to provide shelter and education to both him and his sister. The environment was totally different then from what was seen by both the parents in their families which were rich, respectable & effluent. High position of a close relative & other one educated made things little more supportive.

Conditions can be well appreciated in that scenario, the child was given traditional environment to move along right path and make his career bright. He was not even talked about rights but only good traditions. Things passed by with passage of time with exposure to traditional and contemporary society. Due to limitations the child could not avail opportunity to take up proper higher studies. He could get exposure of Rashtriya Swayamsevak Sangh, but in limited manner since the time was not considered conducive to pursue with. Education in State owned schools in Hindi medium continued. English came in formal education a little late. Exposure to so called progressive society was inevitable. Thus exposure to some sports e.g. Cricket etc was obvious. More or less emphasis on more being traditional remained a point in top position in the agenda.

The child was trained to move in right manner following traditional path i.e. to respect elders, to speak always truth, not to borrow, maintain livelihood within available resources etc. Life was simple and satisfying. He was asked to fulfill all his formal duties i.e. to support parents in all their family targets may it be marriage of sister, family function /ritual, major repair or construction of parental house. To accomplish these it was obvious that he should save money and transfer to parents for their projects.

Problems of localites and outsiders were natural to face in the process of life. It was obvious to find difficulties in language, Community wise favouratism, or support of relatives as was available to others. Since the child was taught to move in right path he did not thought it proper to use recommendations to get better performance results. The same he expected from others which was difficult to observe in the contemporary scenario.

He always tried to do works assigned to him with justice, dedication, honesty & sincerity. Needless to say that, the fellow could get opportunities for higher positions just for possessing these qualities. Of course these are merely ideal words for appreciation and not being followed in the present day society. One of my friend brought up in traditional environment in family and school for formal education, later found it difficult to adjust in the family in particular & society in general, because of the dilemma to follow right path.

One can say that this is an idealistic condition as described in Ramanaya and not practical one as described in Mahabharata. A common person thinks that these achievements can be earned by hooks or crooks and it becomes difficult to digest rise of a common person. Generation of opposition is evident; the sailing becomes more and more difficult, as it happened in case of Abhimanyu during Mahabharata times. This remains common feature in Indian civilization, as is evidenced in literature of Munshi Prem Chand etc, which is self explanatory for India's recent past and downfall.

Therefore it is not merely rights which have to be ascertained but duties should also be taught to everyone in particular for younger generation. Swami Vivekananda once told "Absence of Character building in education has changed our habits". We should focus on increasing our power. One, who is not selfish, not tasted Liquor, Has not gone after women or Greed for money can only be called Saint. Training to younger generation is very important since it forms a larger part of the society and future of the country. Abnormal behavior is seen at many places for lack of it. Misuse of power, made available through legal framework, should be prevented since it can hamper progress of the society in right path by setting wrong examples.

In the present day scenario rise in corruption is very common. People are forgetting their traditional values very fast; Core family structure may be one of the reasons where everyone is concerned about welfare of himself or his core family. Short cuts are becoming more & more popular. It is easier to move down then to climb up.

There are innumerable cases, pertaining to cases of dowry or women harassment to name a few. So called educated persons are following short cuts to gain in short duration of time, May it be class room, family, social circle or administrative/ political set up. Shri Suresh Ji Soni mentioned that Charvak Philosophy is to enjoy present day and leave aside worries for tomorrow. Concept of continuous life cycle birth & rebirth is ignored; the common concept of present day life has become a regu-

lar practice. This deformed perception has changed life style of middle age strata in the society. Cumulative effects of all these ill practices will lead us nowhere but to a path of self destruction.

For a child learning begins at home with family members and later on in school environment. Thus focus on many aspects should be emphasized e.g. Morality, Environment, Sustainability, Our rich cultural traditions including rich heritage in culture, education, samskars etc. The difference is very clear as can be seen in our society compared with western world. Sustainability of family life with support to everyone, even to those who cannot communicate e.g. birds, pets or an animal, with human beings is a typical example.

Today's children form a big chunk in future society therefore their training cannot be underestimated. "The childhood shows the man, as the morning shows the day"- Milton. More over they are expected to lead society in near future and provide right way of life for future generations. Therefore merely talking of rights is just not enough. "Children are hopes, Feel the dignity of a child. Do not feel superior to him, for you are not"- Robert Henry. They should be taught of sustainable consumption. Respect for our mother land, elders, handicaps and all those who need attention is very important aspect which should be inculcated.

Our future lies with younger generations looking bright and promising. Change in society is very essential so as to motivate younger generation to follow right path. It's our duty, every one of us, to take care of every young child to nurture them in proper manner. Similarly every one of us should take care of other aspects for future generations to come. "During exam time students focus on their studies leaving all comforts similarly we should focus on betterment of society"-Shri Guru ji. Take care of pennies and Pounds shall take care of themselves, this concept should be applied in everyday life.❑

(Professor, Structural Engineering Department, Jai Narain Vyas University, Jodhpur)

SC orders physical verification of red-flagged deemed universities

The Supreme Court has said University Grants Commission (UGC) had no option but to physically verify 41 deemed universities which were red-flagged by the Tandon Committee five years ago for deficiencies in infrastructure and faculty.

Seven of the 41 deemed universities had agreed to subject themselves to fresh physical verification, and no clearance granted after scrutinizing photographs and videos of these institutions.

A bench of Justices Dipak Misra and Vikramjit Sen ordered UGC to complete physical verification of the institutions in three months and point out deficiencies, if any, to them. "Give them reasonable time to make good the deficiencies and then submit your report with recommendations on them to the Centre with a copy of it to the court," it ordered.

With UGC having already given its recommendations on 41 deemed universities, petitioner Viplav Sharma's counsel Sanjay Hegde pointed out that the other 34 and UGC could take a plea that the court had not ordered physical verification of institutions other than the seven.

The bench said the singular grievance against UGC was the adoption of verification through photographs and videos of institutions. Additional solicitor general Maninder Singh, appearing for UGC, too sought a clarification even when additional solicitor general Tushar Mehta on behalf of the Centre said he understood that these deemed universities could not escape physical verification.

The bench clarified, "We cannot conceive of such a method. In our opinion, physical verification from all scores and spectrum is a necessity. Neither the petitioners can give a restrictive meaning to it nor UGC can gloss over it by taking recourse to modern methods of photographs and videos. Physical verification is physical verification."

When Hegde repeated his apprehension, the bench said, "We expect UGC to behave. The writing is on the wall."

The bench said the problem was the trust deficit in UGC and it should realize that. "We as court cannot undertake judicial governance. UGC must act fair and square," it said.

This will compel UGC to conduct physical verification of all 41 deemed universities bracketed under deficient category before giving a report to the Centre.

बाल अपराधों के कारण और निवारण

❑ मुरलीधर वैष्णव

किशोर न्याय कानून का सर्वाधिक दुरुपयोग महानगरों से संचालित संगठित क्राइम माफिया गेंग्स खूब करने लगी है । कम उम्र का पतला दुबला लड़का किसी भी धनवान की कोठी के रोशनदान से मकान के भीतर उतारा जा सकता है। वह अन्दर उतर कर मकान की कुन्डी खोलने का काम करता है और शेष जघन्य अपराध जैसे हत्या, बलात्कार लूट वयस्क अपराधी कर लेते हैं । ऐसा बालक या किशोर पकड़ा भी जाय तो उसके मुकदमें का खर्च और यहां तक कि उसके घर का खर्च भी अपराध माफिया उठा लेता है। इतना ही नहीं कोई अनपढ़ किशोर है तो 17 साल का, लेकिन डॉक्टर की मिलीभगत से उसे सोलह साल से कम होने का प्रमाणपत्र मिल जाता है। इस प्रकार वह इस किशोर न्याय व्यवस्था का जमकर दुरुपयोग करने में सफल हो जाता है।

गुड़गांव में एक आठवीं कक्षा के छात्र ने अपने प्रोपर्टी डीलर पिता के रिवॉल्वर से आपसी अनबन वश अपने सहपाठी की गोली मार कर हत्या कर दी। मुंबई के एक उद्योगपति के दस वर्षीय बेटे अदनान का तीन लड़कों ने अपहरण कर दो करोड़ की फिरौती मांगी। फिरौती न देने पर उनमें से सोलह वर्षीय एक किशोर अपराधी ने अदनान की हत्या कर दी। हद तो तब हो गई जब कुछ अर्से पहले एक टी.वी. चैनल पर एक सोलह साल के ऐसे सीरियल किलर किशोर को पुलिस ने गिरफ्तार करना दिखलाया, जिस पर आरोप है कि उसने इस कच्ची उम्र में तेरह हत्याएं कर दी।

ये लोमहर्षक दिल दहला देने वाले समाचार न केवल हमारे बीमार वर्तमान के सूचक है बल्कि एक चिंताजनक भविष्य की आहट देते हैं। संस्कारशीलता और जीवन मूल्यों को ताक पर रख कर जिस प्रकार आज के माता पिता रातों रात येनकेन प्रकारेण करोड़पति, अरबपति बनने की जुगाड़ में रहते हैं, ऐसे में वे अपने बच्चों के व्यक्तित्व में ईमानदारी, प्रेम, धैर्य, सहनशीलता और सच्चरित्र की सीख दे ही नहीं सकते । आज के बच्चे अपनी उम्र से अधिक चतुर और तेज हो चले हैं । वे सब जानते हैं कि पिता की आय जब केवल दस हजार रूपये मासिक है तब हर माह घर में पचीस तीस हजार रुपये खर्च कैसे होते हैं। पिता दिन में अपने व्यापार नौकरी में व्यस्त और माताश्री किटी पार्टी में । रात में दोनों क्लबों में व्यस्त रहते हैं । पीछे बच्चे किस की संगति में या कैसी मानसिकता से गुजर रहे हैं, उन्हें परवाह नहीं। ऐसे में बच्चें जैसे ही किशोर वय की दहलीज पार करते हैं उनके कदम बहकने लगते हैं। एक प्रामाणिक सर्वे के अनुसार शहरी क्षेत्रों में माता पिता अपने बच्चों को पूरे दिन में आधा घंटा से अधिक समय नहीं देते । घर में दादा दादी जैसे बुजुर्गों के प्रति सेवाभाव और सम्मान के प्रति उनके माता पिता की उदासीनता और यहां तक कि उन्हें प्रताड़ित और अपमानित करने के नजारे जब बच्चों के सामने पैदा होते है तब स्वाभाविक है कि उनके बच्चे भी एक दिन अपने माता पिता के साथ ऐसा ही व्यवहार करेंगे और फिर जब एक दिन विस्फोट होता है तब पछताने के सिवाय कुछ नहीं बचता ।

एक सर्वे के अनुसार भारत में बाल अपराध पांच गुना दर से तेजी से बढ़े हैं । वर्ष 2007 में स्कूल छात्रों द्वारा कारित अपराधों की 147 बड़ी हिंसक घटनाए दर्ज हुई जो 2013 में बढ कर करीब साढ़े तीन गुना हो गई। एक अन्य सर्वेक्षण से चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं कि शहरी क्षेत्रों में करीब ग्यारह

प्रतिशत स्कूली छात्र अपने पास पिस्तौल,चाकू और अन्य घातक हथियार रखते हैं । भारत में बाल अपराधों में उत्तर प्रदेश सबसे आगे तथा सबसे कम बाल अपराध वाला राज्य पश्चिम बंगाल है। आखिर बाल अपराधों में यह तेजी क्यों और हमारा कानून इसे नियंत्रित करने में क्यों असफल हो रहा है किसी भी देश में कानून बनाकर संस्कार पैदा नहीं किया जा सकता। न ही कानून की घुसपैठ परिवार के भीतर होने वाले कार्य कलापों पर हो सकती है। इसके लिए बच्चों के माता पिता, संरक्षक और उनके शिक्षकगण को ही आगे आना होगा क्योंकि बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में आनुवांशिकी और उन्हें उपलब्ध परिवेश महत्वपूर्ण होते हैं । घर या स्कूल में योगाभ्यास से भी बच्चों की क्रोध की प्रवृत्ति काबू में रखी जा सकती है । आज जिस प्रकार से शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है तथा आदर्श शिक्षकों का टोटा नजर आता है यह एक गहन चिंता का विषय है। भारत में बाल न्याय तथा बाल न्यायालयों की एक अलग समानांतर व्यवस्था है।

आज भी धरा 82 आई.पी.सी. के तहत सात वर्ष से कम उम्र के किसी बालक/बालिका द्वारा किया गया कोई भी अपराध अपराध नहीं माना जाता। सात वर्ष से अधिक और बारह वर्ष से कम उम्र के बालक/बालिका के लिए भी धारा 83 आई.पी.सी. के तहत उनके द्वारा किये गये अपराध के बारे में यह कानूनी धरणा मानी जाएगी कि उसमें आपराधिक मानसिकता की अभी परिपक्वता नहीं है जब तक कि इसके विरुद्ध धारणा बनाने के पुख्ता प्रमाण न हो। लेकिन जिस कानून को हमारे देश ने जिस कदर इंग्लैंड और अमेरिका के देखादेखी लागू किया है उसका भरपूर दुरुपयोग भी होता दिखाई दे रहा है । उक्त कानून के अनुसार अठारह वर्ष से कम उम्र के किशोर/किशोरी को बालक 'किशोर' की परिभाषा में ही माना जाता रहा है। अभी जरूर यह उम्र घटा कर 16 वर्ष कर दी गई है। ऐसे किशोर/किशोरी द्वारा चाहे कत्ल, लूट, डकैती और बलात्कार जैसा जघन्य अपराध भी कर दिया जाय तब भी उसे सामान्य जेल में नहीं भेजा जाता और उसे विशेष किशोर गृह में रखा जाता है या उसे अमूमन जमानत पर छोड़ दिया जाता है । उनके मामले मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या अन्य किशोर न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में तय करते हैं । हत्या जैसे अपराध में दोषी पाये जाने पर भी किसी किशोर/किशोरी को फांसी या उम्र कैद की भी सजा नहीं दी जा सकती जैसा कि निर्भया के मुकदमें में हुआ।

कानून की इस स्थिति के जिक्र का तात्पर्य यह कतई नहीं है कि किशोर अपराधियों के साथ वयस्क एवं आदतन अपराधियों के समकक्ष ही व्यवहार होना चाहिये । लेकिन यह भी सच है कि अपराध जगत का कोई ऐसा गंभीर अपराध नहीं है जो सोलह सतरह साल का किशोर/किशोरी नहीं कर सकता। इस संबंध में महाभारत के शांति पर्व में अणि मांडव्य ऋषि की कथा में तात्विक मार्गदर्शन मिलता है । किशोर न्याय कानून का सर्वाधिक दुरुपयोग महानगरों से संचालित संगठित क्राइम माफिया गेंग्स खूब करने लगी है । कम उम्र का पतला दुबला लड़का किसी भी धनवान की कोठी के रोशनदान से मकान के भीतर उतारा जा सकता है। वह अन्दर उतर कर मकान की कुन्डी खोलने का काम करता है और शेष जघन्य अपराध जैसे हत्या, बलात्कार लूट वयस्क अपराधी कर लेते हैं । ऐसा बालक या किशोर पकड़ा भी जाय तो उसके मुकदमें का खर्च और यहां तक कि उसके घर का खर्च भी अपराध माफिया उठा लेता है। इतना ही नहीं कोई अनपढ़ किशोर है तो 17 साल का, लेकिन डॉक्टर की मिलीभगत से उसे सोलह साल से कम होने का प्रमाणपत्र मिल जाता है। इस प्रकार वह इस किशोर न्याय व्यवस्था का जमकर दुरुपयोग करने में सफल हो जाता है।

अनाथ बच्चों के हाथ-टांग तोड़ कर उनसे भीख मंगवाने के लिए शहरों में बड़े-बड़े गिरोह सक्रिय है। इतना ही नहीं नेपाल बिहार, बंगाल और उड़ीसा के गरीब परिवार की दस बारह साल की लड़कियों को काम धंधा दिलाने या उन्हें सुनहरे सपने दिखलाकर दिल्ली मुंबई के चकलाघरों में बेचने और उन्हें वैश्यावृति के नरक में झोंकने के लिए भी बड़े बड़े माफिया दल धड़ल्ले से सक्रिय हैं। दरअसल इसके लिए जनजागरण को एक क्रांति का रूप लेना होगा और मीडिया को निरन्तर जागरुक रह कर राजनेता और अपराध जगत की दुरभि सन्धि के विरूद्ध साइरन बजाते रहना होगा। देश में 'द बटर फ्लाईज़' जैसे गैर सरकारी संगठन इस दिशा में सक्रिय है फिर भी माता पिता और संस्कार वृत्ति से जुड़े सामाजिक संगठनों का समय रहते समर्पण भाव से प्रभावी कदम उठाना अत्यंत आवश्यक है जिससे बच्चों की आक्रामकता एवं आपराधिक मानसिकता पर लगाम लगाई जा सके। ❑

(पूर्व न्यायाधीश, जोधपुर)

दीपावली के पावन पर्व पर मंगलकामनाएं

शुभेच्छु

लक्ष्मण भाई ऊ. चौधरी

मददविश शिक्षक

मुकाम पो. वडगाम, जिला बनासकाठा (गुजरात)- 385410

शिक्षकों की कमी व शिक्षक प्रशिक्षण : शिक्षा के अधिकार की प्रमुख बाधा

❑ वीना सुखीजा

शिक्षा का स्तर बद से बदतर होता जा रहा है। विद्यालयों में न सिर्फ योग्य शिक्षकों की कमी है बल्कि ऐसे लोगों की भी कमी है जो शिक्षक बन सकें। शिक्षा का अधिकार कानून के मापदंडों के अनुसार गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए 2011 में टीचर्स एलिजिब्लिटी टैस्ट (टैट) आरम्भ किया गया था, लेकिन मात्र 15 प्रतिशत प्रार्थी ही इसे पास करने में सफल हो सके। इस वजह से कम से कम 14 राज्यों ने आग्रह किया है कि उन्हें टैस्ट से मुक्त रखा जाए।

गौरतलब है कि भारत में 10.9 लाख सरकारी स्कूल हैं और अध्यापकों की संख्या इनमें कुल मिलाकर इतनी है कि प्रति सरकारी स्कूल में 4.2 अध्यापकों का औसत आता है। गैर सहायता प्राप्त विद्यालयों में अध्यापकों का औसत 8.8 प्रति स्कूल है, जबकि भारत में एक अध्यापक वाले 8.3 प्रतिशत सरकारी स्कूल हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार भारत में लगभग 12 लाख अध्यापकों की कमी है और 5.23 लाख पद रिक्त पड़े हैं।

अध्यापकों की यह कमी उस समय गंभीर चिंता का विषय बन जाती है जब शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के नियमों को देखा जाता है, जिसके तहत प्रति 30 छात्रों पर एक अध्यापक का होना आवश्यक है, लेकिन देश में ऐसे भी सरकारी स्कूल हैं जिनमें 117 छात्रों पर केवल एक ही अध्यापक है। अध्यापकों पर जो सरकारी डाटा है उससे मालूम होता है कि बहुत से स्कूल तो ऐसे हैं जिनमें केवल एक ही अध्यापक है। इस डाटा में यह भी दिखाया गया है कि प्राइमरी स्कूलों में अध्यापक छात्रों का अनुपात 1:26 है, लेकिन यह हिसाब ज्यादा ठीक नहीं है क्योंकि इसमें उन अध्यापकों को भी गिन लिया गया है जो कक्षा के प्रभारी नहीं होते जैसे प्रधानाध्यापक, कला अध्यापक या शारीरिक शिक्षक।

देश में अध्यापकों की कमी क्यों है? एक वजह तो यही है जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि योग्य व्यक्ति अध्यापक बनने के लिए सामने नहीं आ रहे हैं, जैसा कि टैट के नतीजों से स्पष्ट है लेकिन इससे भी बड़ा महत्वपूर्ण कारण यह है कि सरकार स्थाई पदों पर भर्ती करने की बजाए ठेके पर सस्ता स्टाफ हासिल करने के जुगाड़ में ही लगी रहती है। 1990 के दशक में जब आर्थिक सुधार कार्यक्रम अपने चरम पर था तो स्थाई स्टाफ में कटौती करने का चलन आरम्भ हुआ। अपने आर्थिक संकट से निपटने के लिए राज्य अध्यापकों के रिक्त पड़े स्थानों को भरने में आनाकानी करने लगे। आज स्थिति यह है कि अकेले दिल्ली में ही 20,000 से अधिक ठेके के अध्यापक हैं। दिल्ली में पिछले तीन साल से 18,000 अध्यापकों के पद रिक्त पड़े हैं और इस कमी को पूरा करने के लिए हाल ही में 6000 मेहमान अध्यापकों को ठेके पर लिया गया है। अगर यह हाल दिल्ली का है तो अन्य राज्यों का अंदाजा खुद-ब-खुद ही लगाया जा सकता है। राज्य सरकारों ने अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए 90 प्रतिशत से अधिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएं निजी क्षेत्र को दे दी हैं, जहाँ स्थिति बहुत ही दयनीय है। इन निजी संस्थानों में प्रबंध समितियां फैकल्टी पूरी करती ही नहीं हैं और केवल कागजों की खानापूति करते हुए छात्रों से मोटी-मोटी फीस वसूल करती हैं।

अगर शिक्षा के स्तर को बेहतर करना है तो 'मेहमान' अध्यापक के इस खराब ट्रेंड पर विराम लगाना होगा। ऐसे मेहमान अध्यापकों को 11 माह के लिए दैनिक भत्ते पर आमंत्रित किया जाता है और उनकी कोई जवाबदेही भी नहीं होती। फिर जब तक वह छात्रों की जरूरत को समझ पाते हैं तो उनके जाने का समय हो जाता है और दैनिक भत्ते पर नए स्टाफ को भर लिया जाता है। इन ठेके के अध्यापकों को बहुत मामूली पैसे दिए जाते हैं जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग हैं। कहीं इन्हें 150 रुपये प्रति कार्य दिवस मिलते हैं तो कहीं 350 रुपये। अपनी आमदनी को बढ़ाने के लिए इन्हें स्कूल में अध्यापन से अलग भी कार्य करने पड़ते हैं या यह छात्रों को

अगर शिक्षा के स्तर को बेहतर करना है तो 'मेहमान' अध्यापक के इस खराब ट्रेंड पर विराम लगाना होगा। ऐसे मेहमान अध्यापकों को 11 माह के लिए दैनिक भत्ते पर आमंत्रित किया जाता है और उनकी कोई जवाबदेही भी नहीं होती। फिर जब तक वह छात्रों की जरूरत को समझ पाते हैं तो उनके जाने का समय हो जाता है और दैनिक भत्ते पर नए स्टाफ को भर लिया जाता है। इन ठेके के अध्यापकों को बहुत मामूली पैसे दिए जाते हैं जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग हैं। कहीं इन्हें 150 रुपये प्रति कार्य दिवस मिलते हैं तो कहीं 350 रुपये। अपनी आमदनी को बढ़ाने के लिए इन्हें स्कूल में अध्यापन से अलग भी कार्य करने पड़ते हैं या यह छात्रों को ट्यूशन लेने के लिए मजबूर करते हैं। इन ठेके के अध्यापकों की वजह से समस्या यह भी खड़ी हो गई है कि जब सरकार को बहुत कम दामों पर ठेके के अध्यापक मिल जाते हैं तो वह स्थाई स्टाफ क्यों नियुक्त करे?

ट्यूशन लेने के लिए मजबूर करते हैं। इन ठेके के अध्यापकों की वजह से समस्या यह भी खड़ी हो गई है कि जब सरकार को बहुत कम दामों पर ठेके के अध्यापक मिल जाते हैं तो वह स्थाई स्टाफ क्यों नियुक्त करे?

अध्यापकों की कमी का एक अन्य कारण उनकी भर्ती प्रक्रिया भी है। राज्य बोर्ड अध्यापकों का चयन करता है और उन्हें विभिन्न स्कूलों में भेजता है। चूंकि इन विद्यालयों में प्रबंध समितियां होती हैं तो अक्सर ऐसा भी देखने को मिलता है कि अगर उनकी मर्जी का अध्यापक न आए तो उसे ज्वाइन नहीं करने दिया जाता। ऐसा भी होता है कि नियुक्त किया गया अध्यापक अपनी मर्जी से स्थानान्तरण भी करा लेता है। इसलिए विशेषज्ञों का कहना है कि अगर अध्यापक नियुक्ति व्यवस्था की बजाए सीधे स्कूल द्वारा नियुक्त किया जाय तो वह स्कूल व छात्रों के प्रति अधिक जवाबदेह होगा।

एक और बड़ी समस्या उन निजी संस्थानों को लेकर है जो बीएड की डिग्री प्रदान कर रहे हैं। इनमें से ज्यादातर अध्यापक शिक्षा के मापदंडों पर खरे नहीं उतरते। फिर इन संस्थाओं का वितरण भी असंतुलित है। मसलन मिजोरम में केवल एक अध्यापक प्रशिक्षण संस्था है, जबकि दक्षिण के राज्यों में इनकी संख्या सैकड़ों में पहुँच जाती है। गौरतलब है कि यह प्रशिक्षण संस्थाएं जो सन् 2000 में 2000 से भी कम थी, 2011 में बढ़कर 14,704 तो हो गई, लेकिन इनकी गुणवत्ता व स्तर की निगरानी सही ढंग से नहीं की गई। इसलिए विशेषज्ञों का मानना है कि इन संस्थाओं में से केवल 10 प्रतिशत ही ऐसी हैं जिनमें स्तरीय प्रशिक्षण प्राप्त होता है। 2012 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा नियुक्त आयोग ने अध्यापक शिक्षा पर अपनी रिपोर्ट दी थी, जिसमें ऐसे तथ्य भी सामने आए थे कि एक अध्यापक के पास ऐसी जगह की डिग्री थी जिसके बारे में उसे स्वयं नहीं मालूम था कि वह जगह कहाँ है। इस रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी कि राज्य अध्यापक प्रशिक्षण में निवेश करें और बी.एड. व एम.एड. की समयावधि में वृद्धि करते हुए इन्हें एक वर्ष के फार्मेट की जगह दो वर्ष का करें और पाठ्यक्रम कंटेंट में भी संशोधन करें। अब ऐसा प्रतीत होता है कि फार्मेट में तब्दीली के लिए तो सरकार राजी हो गई है और मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी ने सितम्बर के तीसरे सप्ताह में उप कुलपतियों की बैठक में स्वीकार किया कि बी.एड. व एम.एड. के पाठ्यक्रम को दो वर्ष का कर दिया जाए। ऐसी भी खबरें हैं कि ईरानी अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम को विश्वविद्यालय व्यवस्था से जोड़ना चाहती है। वर्तमान में अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम विश्वविद्यालय व्यवस्था का हिस्सा नहीं है और यह विश्वविद्यालय कैंपस के बाहर रहता है।

सरकार इन सुधारों पर काम करने का अभी विचार ही कर रही है, लेकिन समय तेजी से गुजरता जा रहा है। 2015 तक प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य सहस्त्राबदि स्वर्णिम विकास के कार्यक्रम के तहत पूरा करना, है, जो उसी सूरत में हो सकता है कि अध्यापकों की जो कमी है उसकी पूर्ति की जाए। ❑

(लेखिका विशिष्ट मीडिया एवं शोध संस्थान इमेज रिफ्लेक्शन सेंटर में कार्यकारी संपादक हैं)

शिक्षकों का विकल्प नहीं- प्रो. आनन्द कुमार

सुपर 30 के संस्थापक एवं भारतीय गणितज्ञ आनंद कुमार का कहना है कि शिक्षकों का 'कोई विकल्प नहीं' है और ऐसा माहौल उत्पन्न किए जाने की आवश्यकता है जिससे शिक्षकों को इस पेशे में सर्वश्रेष्ठ देने के लिए सम्मान और मान्यता मिले। वर्ष 2002 में पटना में शुरू हुए सुपर 30 के संस्थापक कुमार ने स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी की स्टैनफोर्ड इंडिया एसोसिएशन द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में रेखांकित किया कि विश्व के हर कोने में शिक्षा का प्रकाश फैलाने के लिए अधिक से अधिक संख्या में सक्षम शिक्षकों की नियुक्ति करने की आवश्यकता है। यह कार्यक्रम विश्व शिक्षक दिवस के अवसर पर आयोजित किया गया। कुमार ने कहा, शिक्षकों के प्रति समर्थन व्यक्त करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि शिक्षक भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा कर पाएं, हर साल पांच अक्टूबर को विश्व शिक्षक दिवस मनाया जाता है। किसी भी पीढ़ी के लिए पहली और मुख्य आवश्यकता ज्ञान की होती है और यह केवल शिक्षकों के जरिए मिलता है। शिक्षकों का कोई विकल्प नहीं है। यह बात मायने नहीं रखती कि हम धरती के किस कोने में रहते हैं। साल 2002 में स्थापित सुपर 30 हर साल समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबके के 30 मेधावी और प्रतिभाशाली उम्मीदवारों को चुनता है तथा उन्हें आईआईटी, जेईई का प्रशिक्षण देता है। यह उल्लेख करते हुए कि शिक्षक दिवस मात्र औपचारिकता नहीं है, कुमार ने कहा, इससे ऐसा माहौल बनाने में मदद मिलनी चाहिए जिसमें शिक्षकों को वह सम्मान और मान्यता मिले जिसके वे समाज से इस पवित्र पेशे को अपना सर्वश्रेष्ठ देने के लिए हकदार हैं। कुमार ने कहा चाहे, डॉक्टर हों, इंजीनियर हों या फिर वैज्ञानिक हों, सभी में एक चीज समान है। वह सभी शिक्षकों द्वारा बनाए गए हैं। अपनी टिप्पणियों में कुमार ने वहां मौजूद भारतीयों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे उन्हें खुद को नई ऊंचाइयों पर ले जाने वाले अपने व्यापक अनुभव का इस्तेमाल कर देश की तीव्र प्रगति में योगदान करें।

ASAR Report

Aao, padho." Kusum, who had until then been stirring a cowdung slurry, looks up at the crowd of people who have just barged into her house. Read? No one had ever told her to do that. Not in school, where she sits in the back row of Class IX; definitely not at home. "My parents are away," she protests, a thin brown film of the slurry coating her arms all the way up to the elbow. "That's ok. Go wash your hands and try reading this," goads Chandrika Prasad Maurya.

❑

Rampur district has some of the worst learning and dropout levels in the country; the primary school in the village has classes from I to V and only two teachers. Rampur district has some of the worst learning and dropout levels in the country; the primary school in the village has classes from I to V and only two teachers.

Year after year, Pratham's Annual Survey of Education Report, or ASER, tells us about children who go to school but can't read or do basic math. This year, as ASER volunteers fan out across 570 rural districts, Uma Vishnu visits a village in Rampur, a district in UP with some of the worst learning levels in the country, to see what it is to read.

Aao, padho." Kusum, who had until then been stirring a cowdung slurry, looks up at the crowd of people who have just barged into her house. Read? No one had ever told her to do that. Not in school, where she sits in the back row of Class IX; definitely not at home. "My parents are away," she protests, a thin brown film of the slurry coating her arms all the way up to the elbow. "That's ok. Go wash your hands and try reading this," goads Chandrika Prasad Maurya.

Maurya is with a team of volunteers that is conducting a household survey for NGO Pratham's Annual Survey of Education Report or ASER, one of the most definitive barometers of learning levels among children between 3 and 16. This is the survey that has been telling us, year after year since 2005, that much of India can't read and do basic math, that schooling is not the same as learning, and that the country needs to get its basics right.

This year, for the 10th year in a row, ASER volunteers have fanned out across 570 rural districts in the country. This village is among 30 in Uttar Pradesh's Rampur district where volunteers will go to 20 households each, over two days, getting children to read.

So Kusum sits on the edge of a cot, the light from the skylight of the mud house falling onto the paper she is now holding, the water from her wet hands blotting the paper. She looks around her. The entire neighbourhood — children who were out playing, women, her brothers — has turned up to watch Kusum read. Her finger runs rapidly across the lines as she reads in a

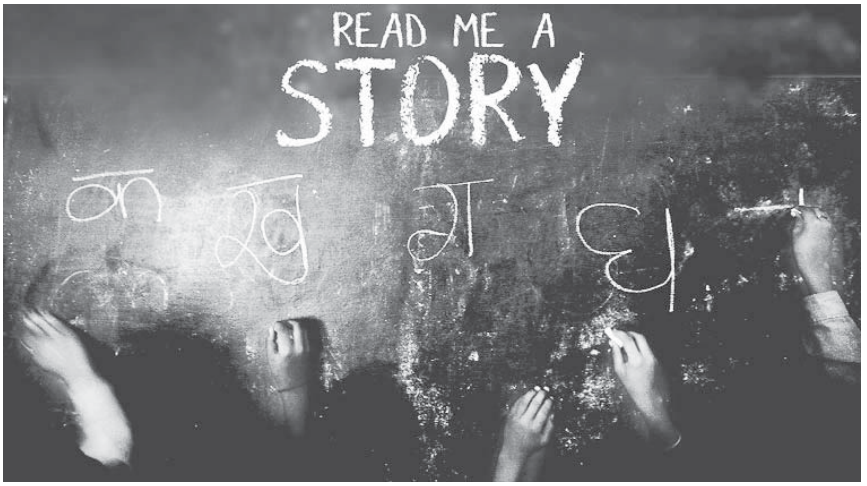

low, nervous drone: "Aaj Ravivar hai. Aaj chutti hai…" But that's not what the text says. She should have been reading: "Raat ho gayi, chand dikh raha hai." Kusum can't read. Next, she tries reading words: paani, aag, taala. She can't. Letters? She struggles, manages a few and then, gets up. She won't read anymore.

"Okay, try some ghatai (subtraction)," says Maurya gently, handing her a pen and paper. It's 41-13. She stares at the hyphenated pattern and finally writes 14 for 41. "What are you writing? It's 41," laughs a gangly boy standing next to her. Maurya shoos him away. After three attempts, she finally copies the numbers right, but can't solve the problem. "Nahin kar payegi. She goes to school, but it's no use," says one of the women crowding around. Kusum shoots her a glare and the woman shoots back: "Galat kah rahin hoon?"

Kusum is 15, in Class IX, but can't read a paragraph from a Class II textbook. Like 62.8 per cent of the children across the country who couldn't last year, according to the 2013 ASER report.

Every year, the figures tell a story — of children who trudge to school, sit in crowded classrooms, spend hours staring at alphabets and numbers that swim against a blackboard, hear their stomachs growl at the smell of the mid-day meal wafting in from the school kitchen, wait endlessly for teachers to make an appearance and then, when the bell rings, walk back home. But can they read? Do basic math? Nobody asks them.

Story-1

Rampur, which lies on the border with Uttarakhand, is the last of the plains of Uttar Pradesh. Once

known for its formidable Rampuri chaku (knives), it now brandishes a somewhat less flattering record, regularly featuring on ASER's report card as a district with some of the worst learning and dropout levels in Uttar Pradesh. The state itself ranks among the lowest in those parameters in the country.

Off the main Bilaspur road, past fields where men and women thresh paddy, is a dirt track that leads into this village of Lodh Rajputs "80 per cent," says pradhan Rajpal Singh. "The rest are Dalit and Muslim families. This is not a rich village. Most of them are farm labourers or work in factories in Rudrapur. Today is a Sunday, but you won't find the men around because they are all away at work."

The village has two schools a government primary school and a higher secondary school the sarpanch's father Karan Singh owns.

"Is the government doing another survey?" asks a woman at a narrow bend from where the ASER team takes a left turn.

Maurya, who is in charge of three districts for ASER, stops to explain: "You send your children to school. The government puts in so much money. Shouldn't they know if the children are learning? Don't you want to know?"

"Haan, pata to karna padega (Yes, we must find out)," says the woman, joining the cavalcade of children who are trailing ASER surveyors Hardesh Kumar and Vivek Dubey.

In their 20s, Kumar and Dubey are training to be primary teachers under the government's District Institute of Educational Training (DIET). They have been here since 8.30 am, having already met the sarpanch, handed him a letter from ASER explaining the survey and drawn up a rough map of the village after an hour's walk. By evening, they have to cover 20 households.

"We select the houses based on a simple baayein haath ka niyam or left-hand rule. The map of the

village is divided into four sections and in each section, the surveyors visit every fifth household on their left," says Sunil Kumar, the ASER coordinator in Uttar Pradesh, turning left into another narrow lane.

Story-2

"Iska bhi survey karwadijiye. He reads well," says a woman, thrusting her child into the lane as the ASER team walks past her house. The child does a Jack-in-the-box and disappears.

The parade of children and their curious mothers stops two houses later, at Radha Devi's house. Her husband, a daily-wage labourer, is not home. A cot is dragged from the courtyard into the only room the family of eight shares.

Kumar and Dubey get down to work. How many children? Six — three boys, three girls. The eldest, Devaki, is 18, so she won't be part of the survey, but she takes charge and answers for her mother. TV? No. Electricity? No. Do they have books in the house? No. Mobile phone? No.

By now, the neighbourhood children who have pulled themselves out in the middle of play are jostling at the door. The women are here, too, to see if Radha Devi's children can read.

It's Ravi's turn. The nine-year-old is so embarrassed he rolls the ends of his shirt and stuffs it into his mouth. "You can't read this way," smiles Sunil. By now, Ravi is having a laughing fit. "Wipe your nose and start reading, babu. Stop laughing," says Devaki, gently holding her little brother down as he bounces, shirt still in mouth. After some coaxing, the shirt is pulled back into place.

Ravi holds the sample paper that has been quarter-folded for him to read the Hindi para. He only manages a couple of alphabets. "Prarambhik (beginner)," calls out Dubey. Kumar makes the entry against Ravi's name. Ravi and two of his siblings had dropped out of school a few years ago. After each of the five children in the house has been tested, the team moves on.

"Only two of the children we have surveyed so far have managed to read the paragraph," says Dubey, leaving Radha Devi's house. "A boy in the first house we went to and Sujay. Remember Sujay? The brother of that girl Kusum, who was mixing the cowdung?"

Sujay says he is 11, but he is already in Class VIII. He had prompted Kusum as she struggled to read, but she had been too nervous to notice. When it was his turn to read, he had sat down on the same cot, Maurya by his side, clutching another of the sample papers. His voice hoarse and thick with excitement, he had read out: "Aaj mamaji ghar aaye…"

By then, his mother Vimla Devi had heard of the survey and had rushed back from the fields. The women were clapping and cheering when she came.

"Ladka pass ho gaya," said one. "He is the only bright kid around," said another. Sujay had breezed through the next few pages — words, alphabets and math, using his fingers rapidly to do three-digit multiplication and division, slowing down only in the English section.

Story-3

The Right to Education Act, 2009, managed to get children to school, pushing up enrolment levels and making sure schools were held accountable for their infrastructure — playgrounds, toilets, kitchens — but it had no way of ensuring learning levels improved. As ASER first found out in 2011, levels of reading and math had, in fact, dropped in many states since the RTE came into effect. In 2008, the proportion of children in Class III who could read a Class I text was 50.4 per cent, but that dipped to nearly 40.2 per cent in 2013.

"Kusum must have been in Class V when the RTE came into effect. Since the Act did away with exams and assessments and said children can't be held back, she must have gone all the way up to Class IX, without ever being tested," says Sunil.

In February 2013, in response to a question in Parliament on declining learning levels in rural schools, then HRD Minister Pallam Raju had dismissed ASER as a "cursory assessment" brought out by Pratham and gone on to say that the NCERT does its own "detailed, periodic" National Achievement Survey that has "revealed improvements in the overall learning levels, even though achievements remain low". It's a line the government has stuck to each time the question of low learning levels has come up in Parliament — soon after the ASER report for 2012 was released in January last year, the question came up at least 15 times over the next two months. This year, the question has already come up twice in Parliament and the government has made the same argument.

"Our reports are not a way to say the government doesn't do its job. It's more important that the government sees there is a problem. Once you do that, solutions are not hard to come by," says

ASER Director Rukmini Banerji.

Over the years, ASER has proposed simple solutions such as grouping children across grades based on their learning levels. "For instance, if there are children who can't identify alphabets in Classes I, II and III, bring them all together and teach them. That's how Bihar's Mission Gunvatta, for instance, works," says Ranajit Bhattacharyya of the ASER Centre.

Story- 4

Imran is in Class V. Rajbir, a year younger, is in IV. But they sit in the same classroom, side by side on the floor, in the front row. The ASER team is in the primary school of the village on Day 2 of the survey to collect data on the school.

While Dubey and Kumar fill up their forms and check the attendance registers, Maurya holds a mock quiz in Class IV-V. "Bharat ka pradhan mantri kaun hai?" "Narendra Modi," the class shouts in chorus. The next few questions get enthusiastic replies till Maurya gets to "up-rashtrapati (vice-president)". Silence. As Maurya leaves the room, Imran pulls out two sheets of paper, runs his finger over a long list of questions and finally reads out:

"Hamid Ansari." He repeats the name and puts the sheets away in his bag. "I stood second in a GK competition at the nyay panchayat level and Rajbir came third. There were 40 children from different villages. Our teacher gave us this list of 60 questions to prepare. I took home 30 and Rajbir took the other 30."

While they study together in class, they don't go to each other's homes, Imran says. "Hum bhai nahin hain na. Rajbir Hindu hai aur main Musalman (We are not brothers, you see. He is Hindu and I am Muslim)."

Dubey and Kumar now take a head count of the number of students in each class. "Of 171 students, 112 are present today. The idea is to make sure the attendance isn't inflated," says Dubey. The school has classes from I to V, two teachers who are both present for the day and two para-teachers who are both on long leave. The principal's post has been vacant for a while.

Story- 5

"You talk of learning levels? There are just the two of us. Look at the amount of forms we have to fill up — admissions, scholarships. And then, do the rounds of banks, open bank accounts for children, uniform distribution… I am an Urdu teacher, but I teach everything… or nothing at all," says Saira Jamal, the senior teacher who doubles as the school in-charge.

The cook walks in and announces that the school kitchen has run out of sugar for the mid-day meal of sweet dalia. So Imran is called from Class V. "Go, run and get some sugar from the pradhanji's house," says Jamal.

Dubey and Kumar take a round of the school's three classrooms, the toilets and the kitchen, and make entries. Class I and II have been clubbed together, Class III is in a room a little distance away and Class IV and V sit together. The anganwadi children walk in and out of classes. Rakesh Kaushal, 26, practically the only teacher, does the rounds of the three classrooms, spending a few minutes in each. "When the teacher is not around, I teach. Ma'am samajh ke," says Imran, beaming, just as Kaushal walks over to Class III.

"There are different levels of learning in each class. This class, for instance, will have a couple of good students and many others who can't do the basics.

That's also because a lot of these children are too young to be in school. Their parents fudge their ages and get them admitted hoping their children will at least get to eat the mid-day meal which, for some, is the only proper meal of the day," says Kaushal, a post-graduate in political science.

Around noon, Imran is back home and has changed into a pair of shorts, still wearing his uniform shirt. He lives in a one-room mud-house at the far end of the village with his parents and four siblings. His father Shoaib Ibrahim repairs shoes at Swar Camp in Rampur, but these days his asthma keeps him mostly at home. "My eldest son is a barber in Delhi and my youngest child is three. All my other children study. My eldest daughter is in Class IX and Imran and his younger brother go to the primary school in the village. My life has been wasted. My father too spent his life this way. I hope my children lead a better life. At least the teachers say good things about them," he says, his tired eyes crinkling in a smile as he ruffles Imran's hair. "He is the naughtiest."

On the way out of the village, Maurya does a quick, back-of the-envelope calculation. "Of the 39 children we surveyed yesterday, only 12 could read a story, 2 could read paragraphs, 3 could read words, 10 only identified letters and 11 were at the beginners' stage. That means, 70 per cent children couldn't read a story," he says. That's where this story begins. ❑

स्वच्छता की नींव पर राष्ट्र निर्माण

❑ गुरचरन दास

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हमें यह याद दिलाने से कभी नहीं चूकता कि भारतीयों में राष्ट्रीय गौरव की भावना थोड़ी और होनी चाहिए। और श्री नरेंद्र मोदी ने नागरिक होने के गौरव को अधिक महत्वपूर्ण बताकर महत्ता स्वीकारी है। सच में यह राष्ट्रवाद की अधिक मजबूत व टिकाऊ नींव है। नागरिकों को नागरिकता के मूल्य सिखाने के लिए स्वच्छ भारत अभियान देश का सबसे महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। केजरीवाल के अस्थिर हाथों से झाड़ू छीनकर और कांग्रेस के आलिंगन से गांधी को छुड़ाकर मोदी ने देश के इतिहास में राष्ट्र की सफाई का सबसे बड़ा अभियान छेड़ा है।

नागरिकता बोध मानव में प्राकृतिक रूप से नहीं आता। इसे लगातार याद दिलाना जरूरी होता है तथा भारत से ज्यादा कहीं और इसकी जरूरत नहीं है, जो अब भी अपने यहां नागरिक निर्मित करने के लिए संघर्ष कर रहा है।

नागरिकता के ख्याल से प्रेरित नागरिक हमेशा पड़ोसियों के बारे में सोचता है फिर चाहे उनकी जाति या वंश कुछ भी क्यों न हो। ऐसे व्यक्ति को 'लव जेहाद' जैसे अभियानों से चोट पहुंचती है, जिसके कारण भाजपा ने उत्तरप्रदेश के हाल के उपचुनावों में 11 सीटों में से 8 सीटें खो दीं, जो उचित ही था। मोदी के आधुनिकीकरण के विचार और आरएसएस के बीच विभाजन पैदा हो रहा है। यह ठीक वैसा ही है, जैसा वाजपेयी व आरएसएस के बीच था। मैं शर्त लगा सकता हूँ कि अंत में जीत प्रधानमंत्री की ही होगी।

आधुनिकीकरण की इस परियोजना में मोदी को टेक्नोलॉजी के कारण सफलता की उम्मीद है, जिसमें महात्मा गांधी और पूर्ववर्ती सरकारें विफल रहीं हैं। उन्हें लगता है कि देशभर में स्वच्छता, देशभर में वाई-फाई जैसी बात है। वे कहते हैं कि विकास सिर्फ वृद्धि दर की बात नहीं है पर साथ में वे लोगों के जीवन में गुणवत्ता लाने की बात भी करते हैं और साफ-सुथरा वातावरण इस दिशा में

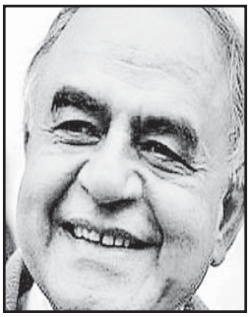

महात्मा गांधी का भी विश्वास था कि नागरिक मूल्य और स्वच्छता राष्ट्रवाद की नींव हैं। लाहौर के प्रसिद्ध कांग्रेस अधिवेशन में वे पूर्ण स्वराज्य की बजाय कांग्रेस प्रतिनिधियों की गंदगी फैलाने की आदतों पर अंतहीन बोलते रहे। जब लोगों ने उनसे पूछा कि उन्होंने स्वराज पर उत्तेजनापूर्ण भाषण क्यों नहीं दिया, तो उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता पाने के लिए व्यक्ति को इसके लायक बनना होता है और योग्य बनने के लिए भारतीयों को व्यक्तिगत अनुशासन और साफ-सफाई के मामले में सुधार लाना होगा। मोदी की तरह गांधी का भरोसा था कि नागरिक दायित्व और स्वच्छता राष्ट्रीय गौरव के आधार हैं। मोदी और गांधी में अंतर यह है कि मोदी हमारी दिन-प्रतिदिन की समस्याएं सुलझाने के लिए टेक्नोलॉजी की शक्ति में भरोसा करते हैं। उन्हें भरोसा है कि मेट्रो परिवहन व्यवस्था के साथ स्मार्ट शहर नए नागरिक मूल्य स्थापित करेंगे।

मददगार है। अब नगर पालिकाओं के सामने कम लागत वाली टेक्नोलॉजी उपलब्ध है, लेकिन वे तब सफल होंगी जब हमारे नागरिक प्रयास करेंगे और इसीलिए हमारे प्रधानमंत्री लोगों का नजरिया बदलने का प्रयास कर रहे हैं।

मोदी सिंगापुर के महान नेता ली कुआन यू का अनुसरण कर रहे हैं, जिन्होंने यह साबित किया कि स्वच्छता के नैतिक मूल्य पर राष्ट्र निर्माण संभव है। हालांकि, यदि भारत को इस अभियान का शोर व जोर ठंडा होने के बाद भी स्वच्छ रहना है तो मोदी को भी वही करना होगा, जो सिंगापुर ने किया। उन्हें कचरा फैलाने के खिलाफ सख्त कानून बनाने होंगे। आरोग्य व लोक स्वास्थ्य पर सतत निवेश जरूरी होगा और यह पैसा सही जगह खर्च होगा।

यदि किसी एक शब्द से भारत के शहरों व कस्बों को वर्णित किया जाए तो वह शब्द है गंदगी। हममें से कई लोग यह सोचते हैं कि गरीबी व गंदगी का चोली-दामन का साथ है, लेकिन बात ऐसी नहीं है। कोई गरीब होकर भी साफ-सुथरा हो सकता है। भारत में सबसे गरीब घर में प्राय: सबसे स्वच्छ रसोईघर होते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान गरीब हो गया था, लेकिन इसके शहर अत्यधिक स्वच्छ थे। वास्तव में पूर्वी एशिया हमेशा से ही दक्षिण एशिया की तुलना में अधिक स्वच्छ रहा है। भारत में भी उत्तर की तुलना में दक्षिण भारतीय समुदाय अधिक स्वच्छ हैं (तब भी जब वे तुलनात्मक रूप से ज्यादा गरीब थे।)

महात्मा गांधी का भी विश्वास था कि नागरिक मूल्य और स्वच्छता राष्ट्रवाद की नींव हैं। लाहौर के प्रसिद्ध कांग्रेस अधिवेशन में वे पूर्ण स्वराज्य की बजाय कांग्रेस प्रतिनिधियों की गंदगी फैलाने की आदतों पर अंतहीन बोलते रहे। जब लोगों ने उनसे पूछा कि उन्होंने स्वराज पर उत्तेजनापूर्ण भाषण क्यों नहीं दिया, तो उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता पाने के लिए व्यक्ति को इसके लायक बनना होता है और योग्य बनने के लिए भारतीयों को व्यक्तिगत अनुशासन और साफ-सफाई के मामले में सुधार लाना होगा। मोदी की तरह गांधी का भरोसा था कि नागरिक दायित्व और स्वच्छता राष्ट्रीय गौरव के आधार हैं। मोदी और गांधी में अंतर यह है कि मोदी हमारी दिन-प्रतिदिन की समस्याएं सुलझाने के लिए टेक्नोलॉजी की शक्ति में भरोसा करते हैं। उन्हें भरोसा है कि मेट्रो परिवहन व्यवस्था के साथ स्मार्ट शहर नए नागरिक मूल्य स्थापित करेंगे। मैं कभी-कभी दिल्ली की मेट्रो में सवार होता हूं और मैंने इसे हमेशा स्वच्छ, शांत और कुशल पाया। इसकी वजह से अचानक अजनबियों के बीच भी रिश्ता कायम हो जाता है। मैंने देखा कि लोगों में वह मैत्री व गरिमा पैदा हो गई, जो वे आमतौर पर अपने रिश्तेदारों व मित्रों के बीच दिखाते हैं। मैं ट्रेन में बैठे हर व्यक्ति से खुद को जुड़ा हुआ महसूस करता हूं। जैसे ही मैं ट्रेन से बाहर सड़क पर आता हूं, चारों ओर वहीं गंदगी पाता हूं। अचानक मैं खुद को अलग-थलग महसूस करने लगता हूं।

इससे ज्यादा सद्भावनापूर्ण, ज्यादा मानवीय कुछ नहीं हो सकता कि गहराई में हम यह महसूस करें कि हम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। हमें ऐसे अवसर निर्मित करने होंगे जहां लोग कंधे से कंधा भिड़ाकर काम करके एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और आदर पैदा कर सकें। मोदी की बात में दम है, क्योंकि दिल्ली मेट्रो ने बता दिया है कि आप शहर की संस्कृति बदल सकते हैं। परिवहन का नया साधन नागरिक क्रांति लाने का शक्तिशाली जरिया हो सकता है।

जब कई ज्वलंत समस्याएं सामने हों तो कचरे के बारे में शिकायत करना अजीब लग सकता है। हालांकि, ली कुआन यू ने दुनिया को बता दिया था कि स्वच्छता के मानक पर राष्ट्र निर्माण किया जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले सिंगापुर किसी भी भारतीय शहर जितना ही गंदा था, लेकिन आज यह धरती का सबसे स्वच्छ शहर है। सिंगापुर ने बड़ी संख्या में कूड़ादान रखवाए और बहुत सारे टॉयलेट का निर्माण करवाया। इसके साथ उन्होंने जुर्माने की कड़ी व्यवस्था उतनी ही शिद्दत से लागू करवाई। कोई भी भारतीय शहर यह कर सकता है। हमारे सुधारों का यही तो निचोड़ है : संस्थाओं की प्रोत्साहन व्यवस्था को लोकहित से जोड़ा गया तो शासक और शासित दोनों का व्यवहार सुधर सकता है। हमारे सार्वजनिक स्थल गंदे क्यों हैं? यह शिक्षा का काम है या यह सांस्कृतिक समस्या है? निश्चित ही अपनी निजी जगहों पर हम तुलनात्मक रूप से स्वच्छ होते हैं। हम रोज नहाते हैं, हमारे घर साफ होते हैं और किचन तो निश्चित ही चमचमाते होते हैं। हमारी राष्ट्रीय छवि ऐसे भारतीय परिवार की है, जो बड़े गर्व से अपना घर साफ करता है और फिर गंदगी दरवाजे के बाहर फेंक देता है। इसकी संभावना नहीं है कि मोदी देश को स्वच्छ करने को लेकर हमें शिक्षित करना छोड़ दें। यदि वे चाहते हैं कि हम हमारी बची हुई जिंदगी में रोज साफ-सफाई करें, तो उन्हें अपने अगले भाषण में यह कहना होगा। मेरे हमवतन देशवासियों, यदि हम अपना दायरा घर के दरवाजे से एक मीटर आगे बढ़ा दें और उस एक मीटर में कचरा फेंकने की बजाय हम उसे चकाचक साफ कर दें तथा सारा देश ऐसा करने लगे तो भारत स्वच्छ हो जाएगा। यह कोई हवा में किला बनाने वाली बात नहीं है। विदेशों में कुछ जगह लोग घर के बाहर के फुटपॉथ रोज धोकर स्वच्छ करते हैं। एक हजार मील की यात्राए पहले मीटर से शुरू होती है। ❑

(वरिष्ठ स्तंभकार और लेखक)

शोषण के शिकार 70 प्रतिशत बच्चे अपने माता-पिता से यह बात कह नहीं पाते। अभिभावकों का दायित्व है कि वे बच्चों से नि: संकोच बात करें। उनके व्यवहार को देखें और समझें। उन्हें सही गलत के बारे में तो बताएं ही, सही और गलत स्पर्श के अंतर को भी समझाएं। अपने बच्चों के सहपाठियों और मित्रों आदि के बारे में जानकारी रखें। बच्चों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि यदि उनके साथ कुछ भी गलत व्यवहार होता है तो वे तुरंत उन्हें सूचित करें।

दरिंदगी का शिकार होते मासूम

❑ सुषमा वर्मा

हाल ही में पश्चिमी दिल्ली के हरी नगर स्थित एक प्ले स्कूल में पढ़ने वाली तीन साल की बच्ची से स्कूल मालिक के 24 वर्षीय बेटे द्वारा बलात्कार की शर्मनाक घटना सामने आई। बच्ची के शरीर से खून बहता देख परिवार वाले उसे डॉक्टर के पास ले गए जहां बच्ची के साथ यौन शोषण की पुष्टि हुई। बताया जाता है कि वह कई दिन से बच्ची का यौन उत्पीड़न कर रहा था। ऐसे ही दिल्ली के रोहिणी स्थित प्ले स्कूल में भी ढाई साल की एक बच्ची के यौन शोषण का मामला सामने आया। बच्ची के बीमार होने पर जांच में पता चला कि उसका यौन उत्पीड़न हुआ है। पिता की शिकायत पर पुलिस ने एफआईआर दर्ज करके स्कूल के ही एक कर्मचारी को गिरफ्तार कर लिया। बाहरी दिल्ली के बेगमपुर के सरकारी स्कूल में भी कुछ समय पहले चार वर्षीय बच्ची के साथ दुर्व्यवहार किया गया। हौजखास की चार वर्षीय बच्ची का स्कूल कैब के ड्राइवर ने घर लौटते समय यौन शोषण किया। ड्राइवर को गिरफ्तार कर लिया गया। जहांगीरपुरी के एक सरकारी स्कूल में पांच लड़कियों का यौन शोषण करने के जुर्म में म्यूजिक टीचर को गिरफ्तार किया गया। एक तरफ दिल्ली सरकार बच्चों का यौन शोषण रोकने के लिए व्यापक जागरुकता मॉड्यूल पर विचार कर रही है और दूसरी तरफ इस तरह की घटनाएं थमने का नाम नहीं ले रहीं हैं।

जाहिर है ऐसी घटनाएं किसी भी संवेदनशील इंसान को झकझोर देंगी। अभिभावकों का गुस्सा जायज है। इससे भी बड़ा सवाल यह है कि अगर दिल्ली में ढाई साल की बच्ची स्कूल में सुरक्षित नहीं है तो फिर कौन सी लड़की या महिला सुरक्षित हो सकती है? इस घटना ने छोटे-छोटे बच्चों के लाखों अभिभावकों के मन में डर पैदा कर दिया है। बच्चों के साथ देश भर में बढ़ रही यौन दुर्व्यवहार की घटनाओं की चुगली अपराध से जुड़े आंकड़े भी करते हैं। पुलिस रिकॉर्ड के मुताबिक उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में नौ माह में (दिसंबर

2013 से अगस्त 2014) पॉक्सो एक्ट के तहत बच्चों के यौन अपराध के 78 मामले दर्ज हुए। हाल में बेंगलुरू के कुछ स्कूलों में 6 से 10 वर्ष की आयु की अनेक लड़कियों के यौन शोषण के मामले सामने आए। इससे स्कूली बच्चों की सुरक्षा के संबंध में गंभीर चिंता उत्पन्न हो गई है। हमारे समाज में बच्चों के प्रति हिंसात्मक घटनाओं में जिस तेजी से वृद्धि हो रही है, वह चिंता का विषय है। स्कूलों को शिक्षा का मन्दिर माना जाता है। बच्चों को स्कूल भेजकर अभिभावक निश्चिन्त हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि बच्चा वहां अच्छे संस्कार सीखेगा, पढ़-लिख कर नेक इंसान बनेगा लेकिन इस विश्वास के साथ जिनके हाथों में वे अपने बच्चों को सौंपते हैं, अगर वे हाथ ही उनका भविष्य चौपट करने लगें तो शिक्षा संस्थानों से लोगों का विश्वास उठ जाएगा। अगर स्कूल भी बच्चों के लिए सुरक्षित नहीं हैं तो वे शिक्षा हासिल करने कहां जाएंगे? ताजा घटनाओं के बाद तो बच्चों को स्कूल भेजने से पहले माता-पिता को दस बार सोचना होगा।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा करवाए गए एक अध्ययन में इस बात का खुलासा हुआ था कि भारत में प्रत्येक तीन में से दो स्कूली बच्चे शारीरिक शोषण का शिकार होते हैं और सबसे ज्यादा यौन शोषण 5 से 12 वर्ष के बच्चों का होता है। शोषण के शिकार 70 प्रतिशत बच्चे अपने माता-पिता से यह बात कह नहीं पाते। अभिभावकों का दायित्व है कि वे बच्चों से नि: संकोच बात करें। उनके व्यवहार को देखें और समझें। उन्हें सही गलत के बारे में तो बताएं ही, सही और गलत स्पर्श के अंतर को भी समझाएं। अपने बच्चों के सहपाठियों और मित्रों आदि के बारे में जानकारी रखें। बच्चों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि यदि उनके साथ कुछ भी गलत व्यवहार होता है तो वे तुरंत उन्हें सूचित करें। मासूम बच्चों के प्रति इतना असंवेदनशील और अमानवीय बर्ताव समझ से परे है। लगता

है, आज दरिंदों के निशाने पर सबसे ज्यादा मासूम और निर्दोष बच्चे ही हैं। यही वजह है कि वे अबोध बच्चियों को अपनी हवस का शिकार बना रहे हैं। भारत में बाल-बलात्कार का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। दुर्भाग्य की बात है कि ज्यादातर बलात्कारी सगे-संबंधी, पारिवारिक मित्र या परिचित होते हैं। ऐसे लोग जिनके साऐ में बच्चे खुद को सुरक्षित समझते हैं, वे ही सबसे ज्यादा उनका शोषण करते हैं। बच्चे क्योंकि वासनात्मक क्रियाकलापों से अनभिज्ञ होते हैं, इसलिए किसी के भी बहकावे में आसानी से आ जाते हैं और बलात्कारी का विरोध करने लायक समझ और शक्ति भी उनमें नहीं होती।

सुनते आऐ हैं कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं लेकिन आज वे असुरक्षा के जिस माहौल में जी रहे हैं और जिस तरह के शोषण का शिकार हो रहे हैं, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे देश का यह भविष्य कितना असुरक्षित है। आज बच्चे अमानवीयता, कुकृत्य, शोषण, सामाजिक अन्याय और उपेक्षा का शिकार हैं। उनके बचपन, भोलेपन और खुशियों की धज्जियां उड़ा दी गई हैं। बचपन में यौन शोषण का शिकार हुए बच्चे वयस्क होने पर भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते। आऐ दिन छोटी-छोटी बच्चियों से बलात्कार की खबरें सामने आ रही हैं। बच्चों की तस्करी, अपहरण और हत्याओं के मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। सड़क हादसों में भी बड़ी संख्या में बच्चों की जान जाती है। कुछ स्कूलों में तो मासूमों को इतनी बेरहमी से पीटा जाता है कि या तो उनके आंख, कान बेकार हो जाते हैं या फिर स्कूल के नाम से ही वे कांपने लगते हैं। एक तरफ सरकार तरह-तरह की योजनाएं चलाकर बच्चों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित कर रही है और दूसरी तरफ ऐसे भी लोग हैं जो बच्चों का मनोबल तोड़ कर उन्हें स्कूल से दूर कर रहे हैं। जब तक ऐसे अपराधियों को कड़ी से कड़ी सजा नहीं मिलती, तब तक ऐसे लोगों के हौसले पस्त नहीं होंगे। वर्तमान परिस्थितियों ने भारत को विश्व में सर्वाधिक यौन शोषित बच्चों का देश बना दिया है। बाल यौन शोषण के आंकड़ों के अनुसार 53 प्रतिशत से अधिक बच्चों को अपने वयस्क होने तक बाल यौन शोषण के हालात का सामना करना पड़ता है। इसके लिए देशव्यापी अभियान के साथ ही कड़े कानून बनाने की आवश्यकता है। ❑

लैंगिक असमानता शिक्षा की राह का रोड़ा

❑ ओ पी सोनिक

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गत 11 अक्टूबर को अन्तर्राष्ट्रीय बालिका दिवस पर समाज से बालिकाओं के प्रति लैंगिक असमानता को मिटाकर कर समानता का वातावरण विकसित करने का आग्रह किया है, साथ ही 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' विषय पर लोगों के सुझाव भी मांगे हैं। प्रधानमंत्री ने स्वतंत्रता दिवस पर विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की अनिवार्यता का मुद्दा भी जोरदार तरीके से उठाया था। उन्होंने सांसदों का आह्वान किया था कि एक वर्ष के लिए सांसद राशि को स्कूलों में शौचालय बनाने पर खर्च करें। सांसदों की तरफसे तो हालांकि अभी तक कोई खास पहल नजर नहीं आ रही है, पर देश के कई उद्योग घरानों, सरकारी एवं अर्धसरकारी संस्थानों ने विद्यालयों में शौचालय बनवाने के लिए करोड़ों की धनराशि देने की घोषणाएं जरूर की हैं। विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालयों का न होना बीच में ही पढ़ाई छोड़ने का अहम कारण माना जाता है।

देश के पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, असम, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में बड़ी संख्या में सरकारी विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की व्यवस्था नहीं है। अगर शौचालय हैं भी तो उनमें से अधिकांश बेकार पड़े हैं। लेकिन सरकारी आंकड़े बता रहे हैं कि लड़कियों के लिए शौचालयों के मामले में काफी सुधार हुआ है। मसलन वर्ष 2009.10 में 59 प्रतिशत विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की व्यवस्था थी, जबकि वर्ष 2013.14 में लड़कियों के लिए शौचालयों की सुविधा उपलब्ध कराने वाले विद्यालयों की संख्या करीब 85 प्रतिशत हो गयी। लेकिन यह भी सर्वविदित है कि हमारे देश में कागजी आंकड़ों में कितनी सचाई होती है। आंध्र प्रदेश के करीब 9 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय नहीं हैं और 8300 विद्यालयों में लड़कियों के लिए बने शौचालय इस्तेमाल के लायक नहीं हैं। असम के करीब 7 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालय

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 2001 से 2011 के बीच महिला साक्षरता दर में करीब 11 प्रतिशत का सुधार हुआ है लेकिन यह अब भी महज 65.46 प्रतिशत बनी हुई है। 2001 में महिला साक्षरता दर 53.67 प्रतिशत थी यूनेस्को के अनुसार साक्षर होने का मतलब लोगों के लिखने.पढ़ने का न्यूनतम ज्ञान मात्र नहीं है, बल्कि साक्षर का मतलब लोगों को जीवन में सक्षम बनाना भी है अगर हम वाकई लड़कियों को शिक्षा के दम पर सक्षम एवं सशक्त बनाना चाहते हैं तो हमें शौचालय अभियान से आगे बढ़कर लड़कियों के प्रति कायम रूढ़िवादी सोच भी बदलनी होगी।

नहीं हैं और करीब 4 हजार विद्यालयों में शौचालय इस्तेमाल के योग्य नहीं हैं। बिहार के करीब 18 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय नहीं है और 9 हजार से अधिक विद्यालयों में शौचालय जर्जर पड़े हैं। झारखंड में करीब 4 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए बने शौचालय बेकार पड़े हैं। मध्य प्रदेश के करीब नौ हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालय नहीं हैं और करीब इतने ही शौचालय बेकार पड़े हैं। महाराष्ट्र के 1226 विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालय नहीं हैं और करीब 2200 विद्यालयों में शौचालय इस्तेमाल के लायक नहीं हैं। उत्तर प्रदेश में करीब 1.61 लाख विद्यालयों में से करीब 6 हजार विद्यालयों में, राजस्थान में करीब 84 हजार विद्यालयों में से करीब 3 हजार विद्यालयों, ओडिशा के करीब 59 हजार विद्यालयों में से करीब 20 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालय की सुविधा नहीं हैं। पश्चिम बंगाल में करीब 14 हजार विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालय नहीं हैं और करीब 9 हजार विद्यालयों में उपयोग के लायक नहीं हैं। दिल्ली, दमन दीव, लक्षद्वीप, चंडीगढ़ और पुडुचेरी के लगभग सभी विद्यालयों में लड़कियों के लिए शौचालयों की व्यवस्था है।

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक 2001 से 2011 के बीच महिला साक्षरता दर में करीब 11 प्रतिशत का सुधार हुआ है। लेकिन यह अब भी महज 65.46 प्रतिशत बनी हुई है। 2001 में महिला साक्षरता दर 53.67 प्रतिशत थी। शिक्षा के लिए जिला सूचना प्रणाली के आंकड़ों के अनुसार उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों की ड्रॉप आउट दर कम हुई है। वर्ष 2011-12 में उच्च प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर लड़कियों की ड्रॉप आउट दर 6.08 प्रतिशत थी जो वर्ष 2013-14 में घटकर 4.01 प्रतिशत रह गई। लड़कियों का विद्यालयों में नामांकन भी बढ़ रहा है। वर्ष 2000-01 में प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का नामांकन 43.2 प्रतिशत था जो वर्ष 2013-14 में बढ़कर 48.20 प्रतिशत हो गया। इसी दौरान उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का नामांकन 40.9 प्रतिशत से बढ़कर 48.6 प्रतिशत हो गया। दिल्ली में तो लड़कियों का नामांकन लड़कों के नामांकन से अधिक दर्ज हुआ है। वर्ष 2003 में लड़कियों की प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की घोषणा की गई थी। इसके तहत वर्ष 2012-13 के अंत तक 442 जिलों के शैक्षणिक रूप से 3353 पिछड़े ब्लॉकों में 4 करोड़ से अधिक लड़कियों को लाभान्वित किया जा चुका है। 41,779 मॉडल स्कूल क्लस्टर के रूप में स्थापित किए जा चुके हैं। ये क्लस्टर स्कूल अन्य विद्यालयों को लिखाई-पढ़ाई, खेलकूद एवं अन्य संबंधित सामान उपलब्ध करा रहे हैं। शैक्षिक स्तर पर लैंगिक असमानता समाप्त करने के लिए लड़कियों को आत्मरक्षा एवं कौशल विकास के लिए प्रशिक्षित करने का काम किया जा रहा है।

सर्वशिक्षा अभियान के तहत बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ अन्य प्रावधान भी किए गए हैं। मसलन, आबादी वाले क्षेत्रों में एक किमी के दायरे में प्राथमिक स्कूल और तीन किमी के दायरे में उच्च प्राथमिक स्कूल की व्यवस्था करना, जिनमें लड़कियों के लिए अलग शौचालयों की सुविधा भी हो। शिक्षकों की नियुक्ति में महिला शिक्षकों की 50 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित करना। बीच में पढ़ाई छोड़ चुकी लड़कियों को शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाना। लेकिन राजस्थान में सर्वशिक्षा अभियान को आगे बढ़ाने के बजाए उसकी गति को बाधित करने के प्रयास हो रहे हैं। राजस्थान में करीब 17 हजार सरकारी विद्यालयों को सरकारी कोष पर आर्थिक बोझ मानते हुए अन्य विद्यालयों में विलय करने के आदेश दिए गए हैं। इनमें से अधिकांश विद्यालयों का दूरदराज वाले इलाकों में विलय किया जा रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि विलय के नाम पर बंद होने वाले इन विद्यालयों की संख्या राज्य के कुल विद्यालयों के बीस प्रतिशत से अधिक हैं। अनेक बालिका विद्यालयों को सह-शिक्षा विद्यालयों में विलय होने से भी लड़कियां हतोत्साहित हो रही हैं। राजस्थान में विद्यालयों के विलय से बच्चों की पढ़ाई पर पड़ने वाले प्रभाव पर एक गैर-सरकारी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार जिन दलित आबादी के विद्यालयों को दबंग जातियों की आबादी वाले विद्यालयों में विलय किया गया है, वहां दलित बच्चों के साथ जातीय भेदभाव की आशंका बढ़ गई है। अधिकांश दलित बच्चे खास तौर से दलित लड़कियां स्कूल जाने की हिम्मत नहीं कर पा रही हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत में साक्षरता अभियानों के कारण साक्षरता दर बढ़ रही है। आम तौर पर हमारे देश में हस्ताक्षर करने लायक व्यक्ति को साक्षर मान लिया जाता है। लेकिन यूनेस्को की शैक्षिक परिभाषा हमें इससे भी आगे ले जाती है। यूनेस्को के अनुसार साक्षर होने का मतलब लोगों के लिखने-पढ़ने का न्यूनतम ज्ञान मात्र नहीं है, बल्कि साक्षर का मतलब लोगों को जीवन में सक्षम बनाना भी है। अगर हम वाकई लड़कियों को शिक्षा के दम पर सक्षम एवं सशक्त बनाना चाहते हैं तो हमें शौचालय अभियान से आगे बढ़कर लड़कियों के प्रति कायम रूढ़िवादी सोच भी बदलनी होगी।❑

उच्च शिक्षा परिदृश्य और भारत सरकार

❑ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

देश में उच्च शिक्षा परिदृश्य अभी भी अराजकतापूर्ण ही दिखाई पड़ रहा है यद्यपि केन्द्र सरकार सुधारों के लिये कटिबद्ध है। स्मरणीय है कि अब तक सतही तौर पर भारत में उच्च शिक्षा का अभूतपूर्व प्रसार हो चुका है। इस समय यहां 574 विश्वविद्यालय, 35,000 से अधिक कॉलेज और लगभग दो करोड़ विद्यार्थी हैं। फिर भी विश्व के शीर्षस्थ 200 विश्वविद्यालयों की सूची में इस देश के एक का भी नाम नहीं है। कारण कि अधिकतर में शोध होती ही नहीं और जिनमें होती भी है वह स्तरीय नहीं होती। 128 मेडिकल कॉलेजों में केवल दस में ही थोड़ी बहुत शोध संज्ञान के योग्य होती है जब कि इंजीनियरिंग कॉलेजों का हाल यह है कि अनेकों सर्वेक्षणों के अनुसार औसतन प्रत्येक चार में से केवल एक डिग्रीधारी इंजीनियर रोजगार के लायक समझा जाता है। यह तो तब है जब भारत को प्रत्येक वर्ष लगभग चार लाख इंजीनियरों की आवश्यकता होती है। ज्ञातव्य है कि 574 की संख्या में आई.आई. टी. तो सम्मिलित हैं परंतु मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेज आदि अतिरिक्ति हैं।

वर्तमान में दिख रहे उच्च शिक्षा के प्रसार के आधार में है निजी विश्वविद्यालय की संख्या में अत्यधिक वृद्धि यद्यपि इन्होंने गुणात्मक स्तर पर जो भूमिका निभाई है, वह निश्चय ही स्तुत्य नहीं है। उन्होंने शिक्षा का असीमित बाजारीकरण तो किया ही, इमारतें भी बड़ी-बड़ी और अत्यधिक सुविधा वाली बना दीं, परंतु विद्वान प्रोफेसर्स की नियुक्ति के मामले में उदासीनता स्पष्ट रही। इसी के चलते शोध के क्षेत्र में उनका योगदान लगभग शून्य रहा। हाँ! कैपिटेशन फीस के नाम पर उनके संचालकों ने उन अभिभावकों को खूब लूटा जिनके पुत्र-पुत्रियाँ अच्छे सरकारी विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने में असफल रहे थे। 12 अगस्त को ''द हिंदू'' जैसे पत्र ने अपने सम्पादकीय में लिखा कि मेडिकल कॉलेजों की दशा तो इस संबंध में सर्वाधिक शोचनीय है जहाँ एक-एक सीट के लिये 40 लाख तक की मांग की जाती है। इसी कारणवश प्रारम्भ में ही लेखक को प्रसार के लिये 'सतही' विशेषण का प्रयोग करने पर मजबूर होना पड़ा है। प्रसन्नता की बात है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अब जाग चुका है और उसने निजी विश्वविद्यालय पर नकेल कसने की ठान ली है। अब इन्हें शिक्षा का बाजारीकरण नहीं करने दिया जायेगा। उन्हें केवल समाज सेवा के स्तर (नो प्रॉफिट नो लॉस) पर ही संचालन की इजाजत दी जायेगी। इसीलिये प्रस्ताव है कि उन्हें आयोग से मान्यता तभी प्राप्त हो सकेगी यदि उनका

प्रख्यात अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ''साईंस'' ने वर्ष 2013 के एक अंक में इस तथ्य को उद्घाटित कर भारतीय उच्च शिक्षा को अत्यधिक लज्जित भी किया है। यहां फेक जर्नलों से तात्पर्य ऐसे जर्नलों से है जो शोधपत्र की मौलिकता अथवा गुणवत्ता की कोई जांच पड़ताल किये बिना ही उसे छाप देते हैं। विश्वविद्यालय में तो शोध प्रबंधों की मौलिकता भी अब संदेह से परे नहीं रही। कभी-कभी तो पूरा का पूरा प्रबंध ही उड़ा लिया जाता है। ज्ञातव्य है कि अभी सितंबर 2014 में समाचार आया है कि आगरा विश्वविद्यालय ने 55 व्यक्तियों की डॉक्टरेट डिग्री इसलिये निरस्त कर दी क्योंकि पुनः जांच करने पर उनके प्रबंधों में वर्णित शोध कार्य मौलिक नहीं पाये गये। इन्हीं कारणों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिलांग विश्वविद्यालय की डिग्रियां भी अमान्य कर रखी हैं।

15 सालों का शिक्षण एवं शोध संबंध रिकार्ड स्तरीय एवं उल्लेखनीय होगा।

यदि हम निजी विश्वविद्यालयों को भूल जायें तो भी देखते हैं कि विशेष बचे सरकारी विश्वविद्यालयों में भी शोध की दशा कुछ अधिक अच्छी नहीं है। शोध का स्तर अत्यंत सामान्य और डॉक्टरेट डिग्री दिलाने भर के योग्य होता है । विशेषतौर पर विज्ञान के क्षेत्र में हालात शोचनीय हैं। निम्नस्तरीय होने के कारण शोधपत्र विश्व के प्रतिष्ठित जर्नलों में बहुधा प्रकाशित नहीं हो पाते और जो होते भी हैं, उनमें भी कुछ ही प्रतिशत अच्छी तरह संदर्भित होते हैं। जो संदर्भित होते हैं, उनके स्रोत भी अधिकांशत: आइ.आइ.टी. जैसे संस्थान ही होते हैं, विश्वविद्यालय नहीं। वस्तुत: नियुक्ति और प्रमोशन के लिये प्रकाशन की बाध्यता के कारण भारत में फेक जर्नलों की बाढ़ सी आई हुई है। प्रख्यात अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ''साईंस'' ने वर्ष 2013 के एक अंक में इस तथ्य को उद्घाटित कर भारतीय उच्च शिक्षा को अत्यधिक लज्जित भी किया है। यहां फेक जर्नलों से तात्पर्य ऐसे जर्नलों से है जो शोधपत्र की मौलिकता अथवा गुणवत्ता की कोई जांच पड़ताल किये बिना ही उसे छाप देते हैं। विश्वविद्यालय में तो शोध प्रबंधों की मौलिकता भी अब संदेह से परे नहीं रही।

कभी-कभी तो पूरा का पूरा प्रबंध ही उड़ा लिया जाता है। ज्ञातव्य है कि अभी सितंबर 2014 में समाचार आया है कि आगरा विश्वविद्यालय ने 55 व्यक्तियों की डॉक्टरेट डिग्री इसलिये निरस्त कर दी क्योंकि पुन: जांच करने पर उनके प्रबंधों में वर्णित शोध कार्य मौलिक नहीं पाये गये। इन्हीं कारणों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिलांग विश्वविद्यालय की डिग्रियां भी अमान्य कर रखी हैं।

शोध के गिरते स्तर का एक बहुत बड़ा कारण पिछले दस वर्षों में मनमोहन सरकार की नीतिगत अकर्मण्यता रही है। उस कालावधि में कभी भी शिक्षा के लिये स्वीकृत राशि जी.डी.पी. के दो प्रतिशत तक पहुंच ही नहीं सकी, अधिक से अधिक 0.9 प्रतिशत ही रही। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों में शोध के लिये उपलब्ध धन अत्यधिक सीमित रहा और इसीलिये वर्तमान में अधिकतर को तो केवल प्रतिष्ठित शिक्षण महाविद्यालय ही कहा जा सकता है। स्मरणीय है कि विज्ञान में तो उल्लेखनीय शोध के लिये अच्छी खासी राशि की आवश्यकता पड़ती है। परंतु स्मरणीय है कि ऐसी शोध ही राष्ट्र की प्रगति के रथ को गति प्रदान करती है।

इस दृष्टि से मोदी सरकार के प्रथम बजट में भी उच्च शिक्षा के लिये कुछ खास नहीं है। परंतु जम्मू, छत्तीसगढ़, गोवा, आन्ध्रप्रदेश एवं केरल में पांच नये आइ.आइ.टी. संस्थानों को प्रारंभ करने के लिये 500 करोड़ की राशि अवश्य आवंटित की गई है। हिमाचल प्रदेश, पंजाब, बिहार, ओडिशा एवं राजस्थान में नये भारतीय प्रबंधन संस्थानों का भी प्रस्ताव किया गया है । मध्यप्रदेश में महान राष्ट्रनायक जयप्रकाश नारायण के नाम पर मानविकी के एक उत्कृष्टता केन्द्र (सेन्टर ऑफ एक्सीलेंस) की स्थापना का भी निर्णय लिया गया है जो स्तुत्य है। आइ. आइ. टी. एवं भारतीय प्रबंधन संस्थानों से अब विद्यार्थी बाहर रह कर भी आनलाईन शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। यह व्यवस्था वैसी ही होगी जैसी विश्व प्रसिद्ध संस्थानों, हारवर्ड विश्वविद्यालय एवं जॉन हॉपकिन्स इंस्टीट्यूट आदि में है। इसके लिये पाठ्यक्रमों के ऑनलाईन मॉड्यूल तैयार किये जा रहे हैं। यह भी एक प्रशंसनीय कदम है।

भारत सरकार की कुछ अन्य योजनायें भी उच्च शिक्षा के लिये अमृत का कार्य कर सकती हैं। नये भारत की नई शिक्षा नीति के लिये एक शिक्षा आयोग का गठन शीघ्र किया जायेगा। स्मरणीय है कि इससे पूर्व अंतिम बार शिक्षा नीति में बदलाव 1992 में किया गया था और तब से विज्ञान और तकनीकी में जो अभूतपूर्व प्रगति हुई है, उसके संबंध में नई शिक्षा नीति अत्यावश्यक है।

विज्ञान में शोध का स्तर सुधारने के अनेक प्रस्ताव हैं। एक तो यह कि अति प्रतिष्ठित राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के मूर्धन्य वैज्ञानिक साल में 12 घंटे उच्च शिक्षा के अध्येताओं के सामने व्याख्याता देकर अच्छी मौलिक शोध में उनकी रुचि जाग्रत करेंगे। विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय ने एक नीति तैयार की है जिसके अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय शोध जर्नल ऑलनाइन मुफ्त पढ़े जा सकेंगे। स्तर सुधारने के ही लिये विदेशी विश्वविद्यालयों से सहयोग का भी प्रस्ताव है जो कार्यान्वित भी हो रहा है। इसकी अनुमति केवल उन विश्वविद्यालय को दी जा रही हौ जिनमें शोध का आधारभूत ढांचा मजबूत है। ब्रिटेन के साथ यह सहयोग काफी बड़े पैमाने पर हो रहा है अथवा प्रस्तावित है।

केन्द्र सरकार की एक महत्वकांक्षी योजना है राष्ट्रीय उच्च शिक्षा अभियान। सम्पूर्ण योजना का वर्णन तो यहां संभव नहीं है परंतु कहा जा सकता है कि इसके अंतर्गत उन्हीं राज्यीय विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों को विशेष अनुदान दिये जायेंगे जिनका प्रदर्शन आदर्श रहा होगा। अनुदान भी राज्यों की अपनी उच्च शिक्षा काउंसिलों के माध्यम से दिया जायेगा। इसकी परिधि में अधिक से अधिक 150 विश्वविद्यालय रखे जायेंगे और देश के 54 कॉलेजों को मॉडल कॉलेज के रुप में विकसित किया जायेगा। यह अनुदान मुख्यत: पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं के आधुनिकीकरण तथा फैकल्टी नियुक्तियों के लिये होगा। निजी विश्विद्यालय इस अनुदान के लिये अधिकृत नहीं होगें। कहना न होगा कि योजना

आकर्षक है और इससे उच्च एवं शिक्षा एवं शोध में गुणात्मक सुधार अपेक्षित है यद्यपि राज्यों द्वारा इसे प्रकार कार्यन्वित किया जा सकेगा यह देखना होगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने सात केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलपतियों की एक समिति को इनमें एक सामान्य पाठ्यक्रम तथा फैकल्टी के एक दूसरे में अदला-बदली की संभावनाओं के अध्ययन एवं कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने के लिये नियुक्त किया है। इसकी अपनी अच्छाइयां हो सकती हैं, परंतु प्रत्येक विश्वविद्यालय का अपना अलग व्यक्तित्व तो समाप्त हो ही जायेगा और यह बात कुछ ठीक नहीं लगती। एक से दूसरे विश्वविद्यालय में बदली होने पर विज्ञान का प्रोफेसर अपनी स्वयं की प्रयोगशाला किस प्रकार बना सकेगा यह प्रश्न भी विचारणीय है।

आइ. आइ.टी. चेन्नई एवं कानपुर को दायित्व सौंपा गया है कि वे भारतीय विश्वविद्यालय तथा तकनीकी संस्थानों के लिये अपना देसी रैंकिंग तंत्र बनायें । यह रैंकिंग तंत्र अत्युच्चस्तरीय एवं देश में चल रहे अन्य ऐसे तंत्रों से पूर्णत: भिन्न होगा। इसके पीछे की सोच निश्चित रूप से स्वागत योग्य है। निजी विश्वविद्यालय एवं उच्च तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों पर यह तंत्र लागू नहीं होगा और इस प्रकार उचित ही उनका महत्व और अधिक घट जायेगा यद्यपि दु:ख की बात है कि कुछ चुनिंदा प्रतिष्ठान जैसे जिंदल विश्वविद्यालय, अशोक विश्वविद्यालय एवं अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय आदि इसके लाभ से वंचित रह जायेंगे।

उच्च शिक्षा और शोध संबंधी नई नीतियां, योजनायें और कार्यक्रम देश में अच्छे दिन अवश्य ही ले आयेंगे। ❑

(पूर्व अध्यक्ष -रसायन विभाग, पूर्व अध्यक्ष- रसायन खंड, इंडियन साइंस कांग्रेस एवं पूर्व सदस्य-केंद्रीय हिन्दी समिति, भारत सरकार (रोहतक-हरियाणा)

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ

2 नवम्बर 2014 को बेलगाम (कर्नाटक) में सम्पन्न राष्ट्रीय साधारण सभा में नवनिर्वाचित राष्ट्रीय पदाधिकारी

संरक्षक	–	प्रो. के. नरहरि
अध्यक्ष	–	डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
महामंत्री	–	प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल
अतिरिक्त महामंत्री	–	प्रो. के. बालकृष्ण भट्ट
राष्ट्रीय संगठन मंत्री	–	श्री महेन्द्र कपूर
सह संगठन मंत्री	–	श्री ओमपाल सिंह
उपाध्यक्ष महिला संवर्ग	–	श्रीमती प्रियंवदा सक्सैना (महाराष्ट्र)
उपाध्यक्ष प्राथमिक संवर्ग	–	श्री जगदीश सिंह चौहान (दिल्ली)
उपाध्यक्ष माध्यमिक संवर्ग	–	डॉ. अशोक कुमार सिंह (झारखण्ड)
उपाध्यक्ष उच्च शिक्षा संवर्ग	–	डॉ. निर्मला यादव (उ.प्र.)
सचिव महिला संवर्ग	–	श्रीमती सीतालक्ष्मी (कर्नाटक)
सचिव प्राथमिक संवर्ग	–	श्री हिम्मत सिंह जैन (म.प्र.)
सचिव माध्यमिक संवर्ग	–	श्री मोहन पुरोहित (राज.)
सचिव उच्च शिक्षा संवर्ग	–	डॉ. प्रगनेश शाह (गुजरात)
संयुक्त सचिव महिला संवर्ग	–	डॉ. सुदेश शर्मा (दिल्ली)
संयुक्त सचिव प्राथमिक संवर्ग	–	श्रीमती सुधा मिश्रा (उ.प्र.)
संयुक्त सचिव माध्यमिक संवर्ग	–	श्री पी. वेंकट राव (तेलंगाना)
संयुक्त सचिव उच्च शिक्षा संवर्ग	–	डॉ. मनोज सिन्हा (दिल्ली)
कोषाध्यक्ष	–	श्री बजरंग प्रसाद मजेजी (राज.)
आंतरिक अंकेक्षक	–	श्री पवन मिश्रा (हि.प्र.)
उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी	–	श्री महेन्द्र कुमार (उ.प्र.)

आमंत्रित सदस्य

1. श्रीमती संजीवनी रायकर (महाराष्ट्र)
2. प्रो. सन्तोष पाण्डेय (राजस्थान)
3. श्री अजीत विश्वास (प.बंगाल)
4. श्री रामकृष्ण नवाल (म.प्र.)
5. श्री टी. सुब्बाराव (आन्ध्रप्रदेश)
6. डॉ. विनोद बनर्जी (उ.प्र.)
7. श्री गोविन्द गणेश देव (गोवा)

क्षेत्र प्रमुख

उत्तर क्षेत्र (जम्मू कश्मीर, हि.प्र., पंजाब, हरियाणा, दिल्ली)- श्री जगदीश चन्द्र कौशिक (दिल्ली)
पश्चिम क्षेत्र (राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा) – श्री प्रभु देशपांडे (महाराष्ट्र)
दक्षिण क्षेत्र (केरल, तमिलनाडु) – श्री पी. चन्द्रशेखरन (केरल)
दक्षिण मध्य क्षेत्र (आ.प्र., तेलंगाना, कर्नाटक) –
पूर्व क्षेत्र (प. बंगाल, अण्डमान, ओडिशा, सिक्किम) – डॉ. नारायण मोहन्ती (ओडिशा)
पूर्वोत्तर क्षेत्र (असम, अरुणाचल, त्रिपुरा, नागालेंड, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय) –
मध्य पूर्व (बिहार, झारखण्ड) – श्री महेन्द्र कुमार (उ.प्र.)
मध्यक्षेत्र (म.प्र., छ.ग.) – श्री किशनलाल नाकड़ा (म.प्र.)
मध्योत्तर क्षेत्र (उ.प्र., उत्तराखंड) – श्री गोविन्द तिवारी (उ.प्र.)

प्रकोष्ठ प्रमुख

प्रकाशन – श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी (राज.) **प्रशिक्षण** – श्री एच. नागभूषण राव (कर्नाटक)
मीडिया – श्री विजय सिंह (म.प्र.) **शैक्षिक** – प्रो. रमेश चन्द्र सिन्हा (बिहार)
वैश्विक शिक्षक –

आयाम प्रमुख

शिक्षक सम्मान – श्री जयभगवान गोयल (दिल्ली) **समर्थ भारत** – श्री किशन लाल नाकड़ा (म.प्र.)

अन्य दायित्व

श्री ए.कुमार स्वामी	–	प्रदेश संगठन मंत्री (आ.प्र. व तेलंगाना प्रदेश)
डॉ. श्याम पुण्डे	–	प्रदेश संयोजक – उच्च शिक्षा (महाराष्ट्र राज्य)

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की बेलगाम (कर्नाटक) में विभिन्न बैठकें सम्पन्न

राष्ट्र उन्नत बनाने के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य करें- प्रो. देशपांडे

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक दिनांक 1 एवं 2 नवम्बर 2014 को बेलगाम (कर्नाटक) में सम्पन्न हुई। साथ ही राष्ट्रीय साधारण सभा की बैठक 2 नवम्बर 2014 को सम्पन्न हुई। सम्बद्ध संगठनों से प्राप्त कार्यवृत्त में गुरुवन्दन कार्यक्रम 21 राज्यों में 342 स्थानों पर सम्पन्न हुए जिनमें पचास हजार से अधिक शिक्षकों एवं गणमान्य व्यक्तियों ने सहभाग किया। शाश्वत जीवन मूल्य जनजागरण अभियान की प्रगति की समीक्षा की गई और अनुभव आया कि अनेक राज्यों की राजधानियों एवं महत्वपूर्ण केन्द्रों पर सम्पन्न सार्वजनिक कार्यक्रमों में शिक्षकों के अलावा छात्रों, अभिभावकों एवं समाज के अन्य गणमान्य महानुभावों ने बड़ी संख्या में सहभाग किये। अनेक स्थानों पर शिक्षण संस्थाओं द्वारा अपने छात्रों के लिए ऐसे कार्यक्रम आयोजन कराने का प्रस्ताव भी किये। इस अभियान के अन्तर्गत अनेक राज्यों में राज्य स्तर के अलावा संभाग स्तर एवं जिला स्तर तक शाश्वत जीवन मूल्य कार्यशालाओं का आयोजन किया गया है और महाविद्यालय तथा विद्यालय स्तर तक पहुँचने की योजना बनाई गई है।

महिला सहभाग वृद्धि के लिए किये गये कार्यों की समीक्षा की गई। महासंघ की कार्यकारिणी में सम्बद्ध संगठनों की महिला प्रतिनिधियों ने सहभाग किया और महिलाओं की सक्रियता बढ़े इसके लिए महिला कार्यसमिति की बैठक 31 अक्टूबर 2014 को बेलगाम (कर्नाटक) में सम्पन्न हुई। महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि के लिए समन्वित प्रयास करने की आवश्यकता अभिव्यक्त की गई।

विक्रम संवत् 2072, गुरुपूर्णिमा के अवसर पर असाधारण योगदान करने वाले अद्‌भुत प्रतिभा के धनी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा संवर्ग के शिक्षकों को सम्मानित करने की योजना पर गहन विचार-विमर्श कर निर्णय लिया गया कि अपने विचार के अन्य संगठनों से सम्पर्क कर ऐसे प्रतिभावान शिक्षकों की जानकारी जुटाई जाये और उन्हें भी ऐसे नाम देने के लिए निवेदन किया जाये। ऐसे असाधारण प्रतिभा के धनी शिक्षकों की खोज प्रारम्भ हो गई है और सभी संगठनों को ऐसे शिक्षकों के नाम 31 दिसम्बर 2014 तक महासंघ को देने का आग्रह किया गया है।

साधारण सभा में दो प्रस्ताव पारित किये गये जिसमें प्रथम, समग्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति बने, द्वितीय बाल अधिकार एवं संरक्षण हेतु सरकार, समाज एवं शिक्षकों द्वारा समन्वित प्रयास किये जायें। (प्रस्ताव आगे दिये गये हैं)

इस अवसर पर शिक्षा एवं शिक्षकों की विविध समस्याओं पर विचार किया गया और केन्द्र सरकार की सकारात्मक पहल पर संतोष व्यक्त किया गया।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के विधान के अनुसार अगले तीन वर्ष के लिए सर्वसम्मति से राष्ट्रीय कार्यकारिणी के निर्वाचन सम्पन्न हुए। निर्वाचन अधिकारी प्राचार्य प्रभु देशपाण्डे (नागपुर) द्वारा राष्ट्रीय कार्यकारिणी के निर्वाचन की घोषणा की गई।

समारोप कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सह सम्पर्क प्रमुख माननीय प्रो. अनिरुद्ध देशपाण्डे जी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। आपने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हम जिस ध्येय एवं सिद्धान्त को लेकर कार्य कर रहे हैं उसके लिए हम यूनियन करें लेकिन यूनियनिज्म नहीं करें। इसी से हम शिक्षा एवं शिक्षक जगत में सुधार लाने का कार्य कर सकते हैं। प्रो. देशपांडे जी ने कहा कि महासंघ द्वारा सम्पन्न किऐ जाने वाले विविध कार्यक्रमों पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए सभी को मिल-जुल कर राष्ट्र को उन्नत बनाने के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करना है। आपने शिक्षकों को अध्ययनशीलता बढ़ाने एवं नवीन विषयों को जानकारी में लाने का आह्वान किया।

राष्ट्रीय साधारण सभा में पारित प्रस्ताव

प्रस्ताव-1

समग्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति बने

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं। गत वर्षों में हुई तीव्र संख्यात्मक वृद्धि के बावजूद भी समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा प्राप्त करना सुलभ नहीं है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा पर किया जा रहा खर्च अपर्याप्त है। घिसी-पिटी प्रथा पर आधारित, रटन्त विद्या की शिक्षा प्रणाली शिक्षार्थियों को कार्य कुशल एवं दक्ष बनाने में विफल है। इसमें न नई सोच है और न ही उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। शिक्षित युवाओं में रोजगार परख योग्यता का नितान्त अभाव है। शारीरिक, भावनात्मक तथा नैतिक शिक्षा पूर्णतया दुर्लक्षित है। पाठ्यक्रमों में एकात्मकता एवं समग्रता का अभाव है। इनके अलावा वर्तमान में शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों व संस्थाओं में तालमेल का अभाव, ज्ञान व विचार का विखण्डन, संस्थानों की स्वायत्तता का क्षरण, शिक्षा का व्यापारीकरण, संस्थाओं का कुप्रबन्धन, समाज से जुड़ाव में कमी, गुणवत्तापूर्ण संस्थाओं के मूल्यांकन का अभाव, शिक्षा के अधिकार कानून की गंभीर विसंगतियां, सरकारी हस्तक्षेप तथा शिक्षाविदों के स्थान पर सरकारी बाबूओं एवं निजी व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा नीति

निर्धारण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शिक्षा की गुणवत्ता आज देश के समक्ष अहम चुनौती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा पर विचार मंथन करने के लिए मुदलियार समिति, डॉ. राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग, नवीन शिक्षा नीति 1986, ज्ञान आयोग आदि का गठन हुआ। उन्होंने अमूल्य एवं व्यावहारिक संस्तुतियाँ भी दी लेकिन शिक्षा की चुनौतियाँ जस की तस बनी रही। क्योंकि इन संस्तुतियों को अमल में लाने के लिए सरकारों द्वारा कोई ठोस कार्यवाही नहीं हो पायी।

अब समय आ गया है कि देश की एक ऐसी समग्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति बने जिसमें शिक्षार्थी की प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक एक साथ समग्रता से विचार हो तथा जो शिक्षार्थी का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास करने में सक्षम हो। जो समाज एवं राष्ट्र के चहुँमुखी उन्नयन में योगदान करे तथा जो शिक्षार्थियों में शाश्वत् जीवन मूल्यों एवं राष्ट्रीयता का संवर्धन करते हुए ज्ञान के उच्चतर सोपानों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करे।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का यह सुविचारित मत है कि शिक्षा की वर्तमान चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने के लिए समग्र रूप से शिक्षा पर विचार करने वाली लचीली किन्तु सुदृढ़ शिक्षा नीति की आवश्यकता है। यह शिक्षा नीति सही मायने में समग्र बने इसके लिए प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक के शिक्षाविदों की सक्रिय सहभागिता आवश्यक है।

महासंघ की यह साधारण सभा केन्द्र सरकार से समग्र राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के सम्बन्ध में शिक्षाविदों को साथ लेकर शीघ्र निर्णायक पहल करने का आग्रह करती है।

प्रस्ताव-2

बाल अधिकार एवं संरक्षण हेतु सरकार, समाज एवं शिक्षकों द्वारा समन्वित प्रयास किये जाएँ

भारतीय जीवन दर्शन एवं भारतीय संस्कृति में स्वाभाविक रूप से बालकों के हित संरक्षण एवं सर्वांगीण विकास की व्यवस्था रही है। बालक में भगवान दर्शन की भावना प्राचीन काल में यहाँ के मानस में विद्यमान रही है। किन्तु दुर्भाग्य से पिछले वर्षों में बाल श्रम, बाल अत्याचार, बाल अपराधी, बाल हिंसा जैसे मामले देश में बढ़ते हुए दिखाई दिये हैं।

यह दृश्य इस तथ्य के उपरान्त है कि हमारे देश में बाल अधिकारों एवं उनके संरक्षण को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है। बालकों के हित संरक्षण के लिए 'बच्चों के अधिकार संरक्षण कानून 1955', बच्चों की देखभाल एवं सुरक्षा कानून 2000, 'शिक्षा का अधिकार कानून 2009' जैसे कानूनों को सरकार द्वारा समय-समय पर लागू किया गया है। हाल ही में सरकार 'बाल न्यायिक कानून 2014' को लागू करने की प्रक्रिया में है।

सरकार द्वारा बाल अधिकारों एवं बाल संरक्षण को वैधानिक सुरक्षा दिये जाने के पीछे मंतव्य तो उचित है किन्तु पश्चिमी विचारधारा पर आधारित कानून भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पूर्णतया अप्रासंगिक है। पश्चिम में व्यक्ति को इकाई मानते हुए उसकी स्वतंत्रता एवं अधिकारों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है जबकि भारत में प्राचीन काल से ही परिवार को इकाई माना है। परिवार में सदस्यों का सहअस्तित्व एक दूसरे की स्वतंत्रता में बाधक नहीं बनता बल्कि परस्पर रक्षण, पोषण का कारण होता है। परिवार एवं समाज से मिले संस्कार बालक को एक सुयोग्य उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित करता है। किन्तु दुर्भाग्य से पिछले वर्षों में पश्चिमी एवं भोगवादी जीवन शैली, मैकालयी शिक्षा पद्धति, उदारीकरण, वैश्वीकरण की नीतियों के कारण जीवन मूल्यों का क्षरण हुआ है तथा संयुक्त परिवार संस्था खंडित हुई है।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का मत है कि बालकों के अधिकार, उनकी सुरक्षा, उचित लालन-पालन एवं सर्वांगीण विकास के लिए सरकार, समाज एवं शिक्षकों के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

सरकार के द्वारा लागू किये जाने वाले वैधानिक उपाय पश्चिमी परिस्थितियों से प्रेरित न होकर पूर्णतया भारतीय प्रतिमानों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिए। भारतीय परिवेश में माता-पिता द्वारा अपने बालकों को ताड़ना स्वाभाविक रूप से उनके प्यार का ही अंश होता है, ऐसे उदाहरणों को पश्चिमी वैधानिक उपायों की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।

भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ भारतीय समाज एवं परिवार व्यवस्था को सुदृढ करना आवश्यक है। भारतीय परिवार संस्था की महत्ता को आज पश्चिम स्वीकार कर रहा है किन्तु समाज इसे भूल रहा है। इसके लिए समाज के विचारशील घटकों को आगे आकर परिवारों का प्रबोधन करना होगा तथा सामूहिक सात्विक जीवन जीने की पद्धति को पुनर्स्थापित करना होगा।

समाज एवं शिक्षकों को मिलकर शाश्वत जीवन मूल्यों के लिए जनजागरण करना होगा। बाल श्रम, बाल अपराध, बाल हिंसा का मूल कारण यहाँ जीवन मूल्यों का क्षरण है। बालकों के अधिकारों का संरक्षण करने के लिए उनकी देखभाल, संस्कार कार्य का एवं उचित सहायता करने वाली सामाजिक मान्यताओं को पुष्ट करना होगा।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का यह सुविचारित मत है कि बाल अधिकार संरक्षण केवल कानूनों से ही नहीं बल्कि सामाजिक परिष्कार, संस्कारयुक्त शिक्षा एवं सुदृढ़ पारिवारिक व्यवस्था स्थापित किये जाने से ही संभव है और इसके लिए सरकार, समाज एवं शिक्षकों को मिलकर काम करना होगा।

राज्य एवं विश्वविद्यालय इकाइयों द्वारा देश भर में दिये गये ज्ञापन

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की ओर से 10 अक्टूबर 2014 को संघ के महामंत्री प्रो. जे.पी. सिंघल ने उच्च शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय स्तर की मांगों के संदर्भ में केन्द्र सरकार को मानव संसाधन विकास मंत्री एवं प्रधानमंत्री को 15 मांगों का ज्ञापन प्रस्तुत किया। महासंघ के महामंत्री प्रो. सिंघल ने बताया कि इन मांगों में देश में शिक्षा व्यवस्था के नियोजन, नियमन एवं नियंत्रण के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा शिक्षाविदों से युक्त स्वतंत्र एवं स्वायत्त नियामक आयोग का निर्माण, राष्ट्रवादी, मौलिक चिंतन, शोध एवं नवाचारों से युक्त शिक्षा के साथ सकल घरेलू उत्पाद का 10 प्रतिशत केन्द्र सरकार एवं राज्य के बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय सुनिश्चित करने की है। इसके अलावा शिक्षा को स्वायत्तता एवं शिक्षा संबंधी सभी निर्णयों में शिक्षकों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए। वहीं राजनीतिक एवं प्रशासनिक हस्तक्षेप बंद हो। देश के सभी महाविद्यालयों में शिक्षकों के पदनाम यूजीसी की अनुशंसा के अनुरूप सहायक प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफेसर तथा प्रोफेसर किया जाए। शिक्षा के बाजारीकरण पर नियंत्रण सुनिश्चित हो। शिक्षकों के रिक्त पदों को भरने, नई पेंशन योजना वापस लेने, शैक्षिक गुणवत्ता बनाए रखने, सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष करने, देश के सभी महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षकों को चिकित्सा सुविधा के लिए नि:शुल्क स्वास्थ्य कार्ड की सुविधा, संविदा शिक्षक, अतिथि शिक्षक, अंशकालिक शिक्षक आदि नामों से कार्य करने वाले प्राध्यापकों को न्यूनतम वेतन एवं सेवा शर्तों की सुनिश्चितता, पीएचडी 2009 नियमों के लागू होने से पूर्व पी एच.डी. के लिए पंजीकृत एवं पी एच. डी. धारकों को नवीन नियमों की शर्तों से मुक्त रखने की मांग शामिल है। वहीं, मांगपत्र में शोध के प्रोत्साहन के लिए पूर्व में दी जाने वाली अतिरिक्त वेतन वृद्धि को पूरे देश में समान रूप से लागू करने, शिक्षकों की नियुक्ति एवं कॅरियर एडवांसमेंट स्कीम के संबंध में एपीआई की शर्तों को व्यवहारिक बनाना है।

शाश्वत जीवन मूल्यों पर कार्यशाला झुंझुनू में सम्पन्न

राजस्थान विश्वविद्यालय व कॉलेज शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का आरआर मोरारका राजकीय पीजी कॉलेज में 12 अक्टूबर 2014 को शाश्वत जीवन मूल्य पर आधारित कार्यशाला सम्पन्न हुई।

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं कॉलेज शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के कार्यक्रम में जयपुर संभाग के कॉलेज शिक्षकों ने भाग लिया। मुख्य वक्ता प्रो. सन्तोष पाण्डेय ने कहा कि भारतीय जीवन मूल्य सांस्कृतिक उत्थान में सहायक है। इसमें सत्य, अहिंसा, अनुशासन, अपरिग्रह जैसे श्रेष्ठ आचरणीय मूल्य हैं। भारतीय संस्कृति में ज्ञान की एक विशिष्ट परंपरा रही है। हमारे नैतिक मूल्य उचित व अनुचित की पहचान है। हमारी संस्कृति में ही वसुधैव कुटुम्बकम और अतिथि देवो भव की भावना निहित है। इसमें सर्वकल्याण की बात है जबकि पाश्चात्य संस्कृति भोगवादी और प्रकृति विध्वंसकारी है।

द्वितीय सत्र में रुक्टा के उपाध्यक्ष डॉ. दीपक शर्मा ने शिक्षकों के माध्यम से जीवन मूल्य स्थापित करने की बात कही। उन्होंने कहा कि संस्कृति सोच का उच्चतम सिद्धांत है, जो पूरे समाज में क्रियांवित होता है। मूल संस्कृति को ध्यान में रखकर ही जीवन मूल्य हासिल किए जा सकते हैं। कार्यशाला में प्रो. योगीनाथ ओझा ने श्रमिक वर्ग के जीवन मूल्यों की प्रयोगसिद्धता, डॉ. धनंजय मिश्र ने कथनी व करनी में एकरूपता, डॉ. सोमकांत भोजक ने सामूहिक सहयोग एवं समर्पण, डॉ. महावीर कुमावत ने जीवन एवं प्रकृति के प्रति चेतना, डॉ. सिद्धि जोशी ने गुरु-शिष्य परंपरा आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला। कार्यशाला में डॉ. विजयसिंह, डॉ. शैफाली, डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. मुकेश, डॉ. समिता सिन्हा, अदिति ओझा, राजकुमार लाटा, सुरेन्द्र सोनी आदि ने भी अपने विचार रखे। इस अवसर पर कॉलेज प्राचार्य पी.के. धायल, रुक्टा (राष्ट्रीय) के क्षेत्रीय सचिव चेतन जोशी व विभागीय अध्यक्ष रामवतार जाट आदि भी उपस्थित थे। संचालन सुरेन्द्र सोनी ने किया।

ABRSM opposes appointment OF OAS officers as Registrars

The AkhIi Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh (ABRSM) has opposed the State Government's move to appoint Odisha Administrative Service (OAS) officers as Registrars in different universities.

The Secretary of the Higher Education wing of the Mahasangh, Dr. Narayan Mohanty, in a statement here, said that the posting of OAS officers as Registrars in the past has made the university administration more complicated, and has not solved any problem.

Condemning the recent appointment of elected office bearers of recognised teachers' associations in administrative posts in the Higher Education Department, Dr. Mohanty said, this move of the Government has created a bad precedent. These administrative officers are taking steps which are detrimental to the interest of their opponents in the cadre, forgetting their duties as office bearers. Dr. Mohanty has urged the Goverment not to appoint OAS officers and offIce bearers of recognised associations in administrative posts in the Higher Education Department.

उदयपुर में रुक्टा (राष्ट्रीय) की शाश्वत जीवन मूल्य कार्यशाला सम्पन्न

अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासंघ के आह्वान पर रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा पैसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर में चित्तौड़ संभाग की शाश्वत जीवन मूल्य कार्यशाला संपन्न की गई।

कार्यशाला का उद्घाटन रा.स्व.संघ के चित्तौड़ प्रान्त संघचालक एवं पेसेफिक विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा एवं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल द्वारा माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्ज्वलन कर किया गया।

उद्घाटन सत्र में रूक्टा (राष्ट्रीय) के महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता द्वारा विषय की भूमिका प्रस्तुत की गई। इस सत्र के मुख्य वक्ता के रूप में उद्बोधन देते हुए डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा ने कहा कि भारत की महानता उसके जीवन मूल्यों में है। यहाँ पराये धन को मिट्टी एवं पराई स्त्री को माता मानना धर्म रहा है। भारत में चाणक्य को पूजा जाता है, घनानन्द को नहीं। उन्होंने कहा कि भारत को पुन: विश्व गुरु बनना है तो शाश्वत जीवन मूल्यों का धनीभूत प्रकटीकरण समाज जीवन में करना ही होगा।

द्वितीय सत्र में संभाग के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से आमंत्रित संभागियों ने अपने विचार प्रकट किये। समारोप सत्र में पाथेय देते हुए डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल ने कहा कि राष्ट्र व्यक्ति से बड़ा है। राष्ट्र का निर्माण करने में चरित्रवान् युवकों की महती भूमिका है और चरित्रवान् युवक तैयार करने की जिम्मेदारी शिक्षकों को अपने कंधों पर लेनी होगी। उन्होंने कहा कि अ.भा.रा. शैक्षिक महासंघ ने ऐसे समर्पित शिक्षकों के माध्यम से शाश्वत जीवन मूल्यों के जागरण का अभियान हाथ में लिया है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए सुखाड़िया विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. बी.एच. चौधरी ने कहा कि जीवन मूल्यों के बिना राष्ट्र वैसा ही है, जैसे बिना सांस के शरीर। उन्होंने कहा कि वर्तमान दुर्दशा का जिम्मेदार जीवन मूल्यों का क्षरण है।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. शिवे शर्मा ने तथा धन्यवाद चन्द्रशेखर शर्मा ने दिया। कार्यक्रम का संयोजन डॉ. दिग्विजय सिंह ने किया।

अजमेर में रुक्टा (राष्ट्रीय) ने की 'विद्यार्थियों की बात-अभिभावकों के साथ'

तेजी से बढ़ते हुए भौतिकवाद के वातावरण में युवा पीढ़ी को अभिभावकों एवं शिक्षकों द्वारा संस्कार ही सही दिशा दिखा सकते हैं। यह वार्ता रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा आयोजित 'विद्यार्थियों की बात-अभिभावकों के साथ' कार्यक्रम में मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर पश्चिम क्षेत्र कार्यवाह श्री हनुमान सिंह राठौड़ ने कही।

उन्होंने कहा कि अभिभावकों के रूप में हमें आत्म चिन्तन की आवश्यकता है, युवा पीढ़ी को ही दोष देना ठीक नहीं है। हमें विचार करना होगा कि हमने शास्त्रीय रीति से बालकों का पालन पोषण किया है अथवा नहीं।

उनका कहना था कि विद्यार्थी देश का भविष्य नहीं बल्कि देश का वर्तमान है। यह लिख कर वह राष्ट्र की उन्नति में अपना सम्यक योगदान दे सके, इसके लिए शाश्वत जीवन मूल्यों का प्रकटीकरण हमारे जीवन में होना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि बालक हमारे आचरण को अपना आदर्श मान कर सीखता है, अत: बचपन से ही उसमें सद्गुण विकसित करने का प्रयास कर उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

मा. हनुमान सिंह जी द्वारा मुख्य वक्तव्य प्रस्तुत करने के पश्चात् जिज्ञासा समाधान कार्यक्रम में कई अभिभावकों ने इस संबंध में अपने सुझाव, प्रश्नादि रखे, जिनका समाधान मुख्य वक्ता द्वारा किया गया।

इससे पूर्व रुक्टा (राष्ट्रीय) के महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने विषय की प्रस्तावना रखते हुए बताया कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के आह्वान पर शाश्वत जीवन मूल्य जनजागरण अभियान के अन्तर्गत यह कार्यक्रम आयोजित किया गया है तथा आगामी समय में इसी तरह के अन्य कई कार्यक्रमों के माध्यम से शाश्वत जीवन मूल्यों के प्रति जन जागृति लाने की संगठन की योजना है।

अतिथियों का परिचय डॉ. सुशील कुमार विस्सू ने दिया जबकि धन्यवाद ज्ञापन व संचालन डॉ. अनूप कुमार क्षत्रिय ने किया। कार्यक्रम में 300 से अधिक अभिभावक उपस्थित थे। सामूहिक कल्याण मंत्र के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

दिल्ली अध्यापक परिषद् की शिक्षा निदेशिका से हुई वार्ता

17 अक्टूबर 2014 को दिल्ली अध्यापक परिषद् का प्रतिनिधि अध्यापकों से संबंधित विभिन्न मांगों को लेकर परिषद के अध्यक्ष जयभगवान गोयल के नेतृत्व में शिक्षा निदेशिका श्रीमती पद्मिनी सिंगला से मिला। मांगों में मुख्य रूप से शिक्षकों को न्यूनतम वेतनमान देने, अध्यापक-छात्र अनुपात 1:30 करने, विद्यालयों में मन्त्रालयी कर्मियों की नियुक्ति, आठवीं कक्षा तक सभी छात्रों को उत्तीर्ण करने की व्यवस्था पर पुनर्विचार करने, अर्जित अवकाश 10 दिन पुन: बहाल करने, आकस्मिक अवकाश 12 दिन करने को लेकर वार्ता हुई। 16 सूत्री मांगों की एक सूची भी सौंपी गई जिसमें सहायता प्राप्त विद्यालयों से संबंधित समस्याओं को रखा गया। लगभग सभी मांगों पर सहमति देते हुए शिक्षा निदेशिका ने यथासंभव निर्णय लेने का आश्वासन दिया। प्रतिनिधि मंडल में राजेन्द्र धामा, जगदीश कौशिक, महेश शर्मा, रूपराम सहरावत, प्रदीप शुक्ला, राजेन्द्र स्वामी, दिनेश नागर तथा अजय कुमार सिंह आदि उपस्थित थे।